रचना संसार

मध्यकाल की प्रमुख पुस्तकों का परिचय

Rachna Sansar: Introduction to Major Books of Medieval Period

पंकज श्रीवास्तव

रचना संसार : मध्यकाल की प्रमुख पुस्तकों का परिचय

रचना संसार : मध्यकाल की प्रमुख पुस्तकों का परिचय

(Rachna Sansar: Introduction to Major Books of Medieval Period)

पंकज श्रीवास्तव

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-6110-7

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

भारत के मध्यकालीन युग में उत्कृष्ट विशिष्टताओं से युक्त भक्ति साहित्य की एक समृद्ध परंपरा विकसित हुई। भारतीय मध्यकाल का सबसे महत्वपूर्ण विकास भक्ति साहित्य वस्तुत: एक प्रेम काव्य है जिसके अंतर्गत दम्पत्तियों अथवा प्रेमियों अथवा सेवक और स्वामी अथवा माता-पिता और सन्तान के मध्य के प्रेम को चित्रित किया गया है। भक्ति आंदोलन में धर्म के प्रति काव्यात्मक दृष्टिकोण और काव्य के प्रति वैराग्य पूर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया था।

भक्ति काव्य के उद्‌भव ने क्षेत्रीय भाषाओं के विकास को प्रेरित किया। भक्ति की अवधारणा ने संस्कृत की कुलीन परंपरा को समाप्त कर दिया और आम जन की सबसे स्वीकार्य भाषाओं को अपनाया। भक्ति काव्य सर्वप्रथम छठी से सातवीं शताब्दी ईस्वी में तमिल में रचा गया था और धीरे-धीरे मध्यकालीन युग के दौरान देश की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में भक्ति काव्य की रचना की गयी।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**सूरदास की प्रमुख पुस्तकें**	**1**
	जीवनपरिचय	1
	सूरसागर	13
	रूपरेखा	16
2.	**कबीर दास की प्रमुख पुस्तकें**	**19**
	जीवन	20
3.	**तुलसीदास की प्रमुख पुस्तकें**	**38**
	जन्म	38
4.	**अमीर खुसरो की प्रमुख पुस्तकें**	**52**
	जीवन	53
	उदाहरण	54
	पद	55
	कहमुकरी	56
	खालिकबारी	61
5.	**विद्यापति की प्रमुख पुस्तकें**	**63**
	कृतियाँ	76
	महाकवि की रचनाएँ	90

6. मलिक मुहम्मद जायसी की प्रमुख पुस्तकें **92**
संक्षिप्त परिचय 93
अखरावट का कथावस्तु 102
आखिरी कलाम 107
7. रसखान की प्रमुख पुस्तकें **118**
परिचय 118
8. मैग्ना कार्टा **120**
परिचय 120
9. जियाउद्दीन बरनी की प्रमुख पुस्तकें **124**
परिचय 124
10. दांते एलीगियरी की प्रमुख पुस्तकें **126**
परिचय 127
11. रहीम की प्रमुख पुस्तकें **132**
जीवनपरिचय 133
रहीम ग्रंथावली 136

1

सूरदास की प्रमुख पुस्तकें

हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हिंदी साहित्य के सूर्य, माने जाते हैं। सूरदास जन्म से अंधे थे या नहीं, इस सम्बम्ध में विद्वानों में मतभेद है।

जीवन-परिचय

सूरदास का जन्म 1478ई. में रुनकता नामक गाँव में हुआ। यह गाँव मथुरा-आगरा मार्ग के किनारे स्थित है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह बहुत विद्वान थे, उनकी लोग आज भी चर्चा करते हैं। मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे थे। सूरदास के पिता, रामदास गायक थे। सूरदास के जन्मांध होने के विषय में मतभेद हैं। प्रारंभ में सूरदास आगरा के समीप गऊघाट पर रहते थे। वहीं उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर के कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया। सूरदास की मृत्यु गोवर्धन के निकट पारसौली ग्राम में 1584 ईस्वी में हुई।

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

'साहित्य लहरी' सूर की लिखी रचना मानी जाती है। इसमें साहित्य लहरी के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न पद मिलता है -

मुनि पुनि के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख।

इसका अर्थ संवत् 1607 ईस्वी में माना गया है, अतएवं 'साहित्य लहरी' का रचना काल संवत् 1607 वि. है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रमाण मिलता है कि सूर के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे।

सूरदास का जन्म सं. 1540 ईस्वी के लगभग ठहरता है, क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि बल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे और बल्लभाचार्य का जन्म उक्त संवत् की वैशाख् कृष्ण एकादशी को हुआ था। इसलिए सूरदास की जन्म-तिथि वैशाख शुक्ला पंचमी, संवत् 1535 वि. समीचीन जान पड़ती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका मृत्यु संवत् 1620 से 1648 ईस्वी के मध्य स्वीकार किया जाता है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी** के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि. के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 ईस्वी के आसपास माना जाता है।

श्री गुरु बल्लभ तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरदास की आयु 'सूरसारावली' के अनुसार उस समय 67 वर्ष थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर उनका जन्म रुनकता अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में हुआ था। मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। बल्लभाचार्य से इनकी भेंट वहीं पर हुई थी। 'भावप्रकाश' में सूर का जन्म स्थान सीही नामक ग्राम बताया गया है। वे सारस्वत ब्राह्मण थे और जन्म के अंधे थे। 'आइने अकबरी' में (संवत् 1653 ईस्वी) तथा 'मुतखबुत-तवारीख' के अनुसार सूरदास को अकबर के दरबारी संगीतज्ञों में माना है।

क्या सूरदास जन्मान्ध थे?

सूरदास श्रीनाथ की 'संस्कृतवार्ता मणिपाला',, श्री हरिराय कृत 'भाव-प्रकाश', श्री गोकुलनाथ की 'निजवार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर, जन्म के अन्धे माने गए हैं। लेकिन राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का सजीव चित्रण, नाना रंगों का वर्णन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशीलता आदि गुणों के कारण अधिकतर वर्तमान विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते।

श्यामसुन्दर दास ने इस सम्बन्ध में लिखा है–"सूर वास्तव में जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग-रुपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मान्ध नहीं कर सकता।" **डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी**, ने लिखा है - "सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अन्धा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए।"

रचनाएँ

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं–

(1) सूरसागर - जो सूरदास की प्रसिद्ध रचना है, जिसमें सवा लाख पद संग्रहित थे। किंतु अब सात-आठ हजार पद ही मिलते हैं,

(2) सूरसारावली,

(3) साहित्य-लहरी - जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं,

(4) नल-दमयन्ती,

(5) ब्याहलो,

'पद संग्रह'–दुर्लभ पद।

उपरोक्त में अन्तिम दो अप्राप्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत्, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, साहित्य लहरी की प्राप्त प्रति में बहुत प्रक्षिप्तांश जुड़े हुए हैं।

साहित्य लहरी, सूरसागर, सूर की सारावली।

श्रीकृष्ण जी की बाल-छवि पर लेखनी अनुपम चली।।

सूरसागर का मुख्य वर्ण्य विषय श्री कृष्ण की लीलाओं का गान रहा है।

सूरसारावली में कवि ने जिन कृष्ण विषयक कथात्मक और सेवा परक पदों का गान किया उन्ही के सार रूप में उन्होंने सारावली की रचना की है।

सहित्यलहरी में सूर के दृष्टिकूट पद संकलित हैं।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1. सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्‌गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग से श्रेष्ठ है,
2. सूर ने वात्सल्य, शृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्व व्यापी बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है–

   मैया कबहिं बढ़ैगी चौटी?
   किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

   सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति हैं, जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है,
3. जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है,
4. सूर ने भक्ति के साथ शृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है,
5. सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

   हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।
   समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।
6. सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं,
7. प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है,
8. सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है,
9. सूर का भ्रमरगीत वियोग-शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटें भी मिलते हैं,

10. सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है,
11. सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है,
12. सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है,
13. सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्त्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हिंदी साहित्य के महाकवि हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।

काव्य-रस एवं समीक्षा

सूरदास जी वात्सल्यरस के सम्राट माने गए हैं। उन्होंने शृंगार और शान्त रसो का भी बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। बालकृष्ण की लीलाओं को उन्होंने अन्त:चक्षुओं से इतने सुन्दर, मोहक, यथार्थ एवं व्यापक रूप में देखा था, जितना कोई आँख वाला भी नहीं देख सकता। वात्सल्य का वर्णन करते हुए वे इतने अधिक भाव-विभोर हो उठते हैं कि संसार का कोई आकर्षण फिर उनके लिए शेष नहीं रह जाता।

सूर ने कृष्ण की बाललीला का जो चित्रण किया है, वह अद्वितीय व अनुपम है। **डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी** जी ने लिखा है - "संसार के साहित्य की बात कहना तो कठिन है, क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंश मात्र हमारा जाना है, परन्तु हमारे जाने हुए साहित्य में इतनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता के साथ लिखी हुई बाललीला अलभ्य है। बालकृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण

में कवि कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देता है। न उसे शब्दों की कमी होती है, न अलंकार की, न भावो की, न भाषा की। अपने-आपको पिटाकर, अपना सर्व निछावर करके जो तन्मयता प्राप्त होती है वही श्रीकृष्ण की इस बाल-लीला को संसार का अद्वितीय काव्य बनाए हुए है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इनकी बाललीला-वर्णन की प्रशंसा में लिखा है - "गोस्वामी तुलसी जी ने गीतावली में बाललीला को इनकी देखा-देखी बहुत विस्तार दिया सही, पर उसमें बाल-सुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रूप-वर्णन की ही प्रचुरता रही। बाल-चेष्टा का निम्न उदाहरण देखिए -

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी?
कितिक बार मोहि दूध पियत भई,
यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति 'बल' की बेनी
ज्यों ह्ववै है लाँबी मोटी।।
खेलत में को काको गोसैयाँ
जाति-पाँति हमतें कछु नाहिं,
न बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें,
अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ।
सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरुन चलत रेनु तन मंडित,
मुख दधि लेप किए।।

सूर के शान्त रस वर्णनों में एक सच्चे हृदय की तस्वीर अति मार्मिक शब्दों में मिलती है।

कहा करौ बैंकुठहि जाय?
जहँ नहिं नन्द, जहाँ न जसोदा,
नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय।
जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल
और नहीं कदमन की छाँय।
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी,
ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय।

कुछ पदों के भाव भी बिल्कुल मिलते हैं, जैसे -

अनुखन माधव माधव सुमिरइत सुंदर भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गुन लुबधाई।।
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छल छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटइत आधा आधा बानि।।
राधा सयँ जब पनितहि माधव, माधव सयँ जब राधा।
दारुन प्रेम तबहि नहिं टूटत बाढ़त बिरह क बाधा।।
दुहुँ दिसि दारु दहन जइसे दगधइ,आकुल कोट-परान।
ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि कबि विद्यापति भान।।

इस पद्य का भावार्थ यह है कि प्रतिक्षण कृष्ण का स्मरण करते-करते राधा कृष्णरूप हो जाती हैं और अपने को कृष्ण समझकर राधा के वियोग में 'राधा राधा' रटने लगती हैं। फिर जब होश में आती हैं तब कृष्ण के विरह से संतप्त होकर फिर 'कृष्ण कृष्ण' करने लगती हैं।

सुनौ स्याम ! यह बात और काउ क्यों समझाय कहै।
दुहुँ दिसि की रति बिरह बिरहिनी कैसे कै जो सहै।।
जब राधे, तब ही मुख 'माधौ माधौ' रटति रहै।
जब माधो ह्यवै जाति, सकल तनु राधा - विरह रहै।।
उभय अग्र दव दारुकीट ज्यों सीतलताहि चहै।
सूरदास अति बिकल बिरहिनी कैसेहु सुख न लहै।।

सूरसागर में जगह जगह दृष्टिकूटवाले पद मिलते हैं। यह भी विद्यापति का अनुकरण है। 'सारंग' शब्द को लेकर सूर ने कई जगह कूट पद कहे हैं। विद्यापति की पदावली में इसी प्रकार का एक कूट देखिए -

सारँग नयन, बयन पुनि सारँग,
सारँग तसु समधाने।
सारँग ऊपर उगल दस सारँग
केलि करथि मधु पाने।।

पच्छिमी हिन्दी बोलने वाले सारे प्रदेशों में गीतों की भाषा ब्रज ही थी। दिल्ली के आसपास भी गीत ब्रजभाषा में ही गाए जाते थे, यह हमने खुसरो (संवत् 1340) के गीतों में देखा हैं। कबीर (संवत् 1560) के प्रसंग में कहा जा चुका है कि उनकी 'साखी' की भाषा तो "सधुक्कड़ी" है, पर पदों की भाषा

काव्य में प्रचलित व्रजभाषा है। यह एक पद तो कबीर और सूर दोनों की रचनाओं के भीतर ज्यों का त्यों मिलता है –

है हरिभजन का परवाँन।
नीच पावै ऊँच पदवी,
बाजते नीसान।
भजन को परताप ऐसो
तिरे जल पापान।
अधम भील, अजाति गनिका
चढ़े जात बिवाँन।।
नवलख तारा चलै मंडल,
चले ससहर भान।
दास धू कौं अटल
पदवी राम को दीवान।।
निगम जामी साखि बोलैं
कथैं संत सुजान।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ,
राखि लेहु भगवान।।
(कबीर ग्रंथावली)
है हरि-भजन को परमान।
नीच पावै ऊँच पदवी,
बाजते नीसान।
भजन को परताप ऐसो
जल तरै पाषान।
अजामिल अरु भील गनिका
चढ़े जात विमान।।
चलत तारे सकल, मंडल,
चलत ससि अरु भान।
भक्त ध्रुव की अटल पदवी
राम को दीवान।।
निगम जाको सुजस गावत,

सुनत संत सुजान।
सूर हरि की सरन आयौ,
राखि ले भगवान।।
(सूरसागर)

कबीर की सबसे प्राचीन प्रति में भी यह पद मिलता है, इससे नहीं कहा जा सकता है कि सूर की रचनाओं के भीतर यह कैसे पहुँच गया।

राधाकृष्ण की प्रेमलीला के गीत सूर के पहले से चले आते थे, यह तो कहा ही जा चुका है। बैजू बावरा एक प्रसिद्ध गवैया हो गया है, जिसकी ख्याति तानसेन के पहले देश में फैली हुई थी। उसका एक पद देखिए –

मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहन तें।
गोपी रीझि रही रसतानन सों सुधबुध सब बिसराई।
धुनि सुनि मन मोहे, मगन भईं देखत हरि आनन।
जीव जंतु पसु पंछी सुर नर मुनि मोहे, हरे सब के प्रानन।
बैजू बनवारी बंसी अधर धरि बृंदाबन चंदबस किए सुनत ही कानन।।

जिस प्रकार रामचरित का गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदासजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार कृष्णचरित गाने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदासजी का। वास्तव में ये हिंदी काव्यगगन के सूर्य और चंद्र हैं। जो तन्मयता इन दोनों भक्तशिरोमणि कवियों की वाणी में पाई जाती है वह अन्य कवियों में कहां। हिन्दी काव्य इन्हीं के प्रभाव से अमर हुआ। इन्हीं की सरसता से उसका स्रोत सूखने न पाया।

उत्तम पद कवि गंग के,
कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गँभीर को,
सुर तीन गुन धीर।।

इसी प्रकार यह दोहा भी बहुत प्रसिद्ध है –

किधौं सूर को सर लग्यो,
किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो,
बेध्यो सकल सरीर।।

यद्यपि तुलसी के समान सूर का काव्यक्षेत्र इतना व्यापक नहीं कि उसमें जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं का समावेश हो पर जिस परिमित पुण्यभूमि में

उनकी वाणी ने संचरण किया उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक ओर किसी कवि की नहीं–

काहे को आरि करत मेरे मोहन !
यों तुम आँगन लोटी?
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर,
य है बात तेरी खोटी।।
सूरदास को ठाकुर ठाढ़ो
हाथ लकुट लिए छोटी।।
सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेनु - तन - मंडित,
मुख दधि-लेप किए।।
सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराय कर पानि गहावति,
डगमगाय धरै पैयाँ।।
पाहुनि करि दै तरक मह्यौ।
आरि करै मनमोहन मेरो,
अंचल आनि गह्यो।।
व्याकुल मथत मथनियाँ रीती,
दधि भ्वै ढरकि रह्यो।।

बालकों के स्वाभाविक भावों की व्यंजना के न जाने कितने सुंदर पद भरे पड़े हैं। 'स्पर्धा' का कैसा सुंदर भाव इस प्रसिद्ध पद में आया है -

मैया कबहिं बढ़ैगी चीटी?
कितिक बार मोहिं दूध पियत भई,
वह अजहूँ है छोटी।

वात्सल्य के समान ही शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं। गोकुल में जब तक श्रीकृष्ण रहे तब तक का उनका सारा जीवन ही संयोग पक्ष है–

करि ल्यौ न्यारी,
हरि आपनि गैयाँ।

नहिंन बसात लाल कछु तुमसों
सबै ग्वाल इक ठैयाँ।
धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत,
एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।।
मोहन कर तें धार चलति पय
मोहनि मुख अति ह छवि बाढ़ी।।

राधा कृष्ण के रूप वर्णन में ही सैकड़ों पद कहे गए हैं निमें उपमा, रुपक और उत्प्रेक्षा आदि की प्रचुरता है। आँख पर ही न जाने कितनी उक्तियाँ हैं–

देखि री ! हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई,
नहिं पटतर एक सैन।।
राजिवदल इंदीवर, शतदल,
कमल, कुशेशय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वै बिगसत, ये बिगसे दिन राति।।
अरुन असित सित झलक पलक प्रति,
को बरनै उपमाय।
मनो सरस्वति गंग जमुन
मिलि आगम कीन्हों आय।।

नेत्रों के प्रति उपालंभ भी कहीं-कहीं बड़े मनोहर हैं –

सींचत नैन-नीर के, सजनी ! मूल पतार गई।
बिगसति लता सभाय आपने छाया सघन भई।।
अब कैसे निरुवारौं, सजनी ! सब तन पसरि छई।

सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है, जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता। उद्धव तो अपने निर्गुण ब्रह्मज्ञान और योग कथा द्वारा गोपियों को प्रेम से विरत करना चाहते हैं और गोपियाँ उन्हें कभी पेट भर बनाती हैं, कभी उनसे अपनी विवशता और दीनता का निवेदन करती हैं –

उधो ! तुम अपनी जतन करौ
हित की कहत कुहित की लागै,

किन बेकाज ररौ?
जाय करौ उपचार आपनो,
हम जो कहति हैं जी की।
कछू कहत कछुवै कहि डारत,
धुन देखियत नहिं नीकी।

इस भ्रमरगीत का महत्त्व एक बात से और बढ़ गया है। भक्तशिरोमणि सूर ने इसमें सगुणोपासना का निरूपण बड़े ही मार्मिक ढंग से, हृदय की अनुभूति के आधार पर तर्कपद्धति पर नहीं – किया है। सगुण निर्गुण का यह प्रसंग सूर अपनी ओर से लाए हैं। जबउद्धव बहुत सा वाग्विस्तार करके निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश बराबर देते चले जाते हैं, तब गोपियाँ बीच में रेककर इस प्रकार पूछती हैं –

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर हँसि समुझाय,
सौह दै बूझति साँच, न हाँसी।

और कहती हैं कि चारों ओर भासित इस सगुण सत्ता का निषेध करक तू क्यों व्यर्थ उसके अव्यक्त और अनिर्दिष्ट पक्ष को लेकर यों ही बक-बक करता है–

सुनिहै कथा कौन निर्गुन की,
रचि पचि बात बनावत।
सगुन – सुमेरु प्रगट देखियत,
तुम तृन की ओट दुरावत।।

उस निर्गुण और अव्यक्त का मानव हृदय के साथ भी कोई सम्बन्ध हो सकता है, यह तो बताओ –

रेख न रूप, बरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत।
अपनी कहौ, दरस ऐसे को तु कबहूँ हौ पावत?
मुरली अधर धरत है सो, पुनि गोधन बन बन चारत?
नैन विसाल, भौंह बंकट करि देख्यो कबहुँ निहारत?
तन त्रिभंग करि, नटवर वपु धरि, पीतांबर तेहि सोहत?
सूर श्याम ज्यों देत हमैं सुख त्यौं तुमको सोउ मोहत?

अन्त में वे यह कहकर बात समाप्त करती हैं कि तुम्हारे निर्गुण से तो हमें कृष्ण के अवगुण में ही अधिक रस जान पड़ता है –

ऊनो कर्म कियो मातुल बधि,
मदिरा मत्त प्रमाद।
सूर श्याम एते अवगुन में
निर्गुन नें अति स्वाद।।

सूरसागर

सूरसागर सूरदास जी का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'सूरसागर' में लगभग एक लाख पद होने की बात कही जाती है। किन्तु वर्तमान संस्करणों में लगभग पाँच हजार पद ही मिलते हैं। विभिन्न स्थानों पर इसकी सौ से भी अधिक प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका प्रतिलिपि काल संवत् 1658 विक्रमी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक है इनमें प्राचीनतम प्रतिलिपि नाथद्वारा, मेवाड़ के 'सरस्वती भण्डार' में सुरक्षित पायी गई हैं।

इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला' और 'भ्रमर-गीतसार' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

सूरसागर की सराहना करते हुए **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने लिखा है -"काव्य गुणों की इस विशाल वनस्थली में एक अपना सहज सौन्दर्य है। वह उस रमणीय उद्यान के समान नहीं जिसका सौन्दर्य पद-पद पर माली के कृतित्त्व की याद दिलाता है, बल्कि उस अकृत्रिम वन-भूमि की भाँति है जिसका रचयिता रचना में घुलमिल गया है।" दार्शनिक विचारों की दृष्टि से 'भागवत' और 'सूरसागर' में पर्याप्त अन्तर है। सूरसागर, ब्रजभाषा में महाकवि सूरदास द्वारा रचे गए कीर्तनों-पदों का एक सुंदर संकलन है, जो शब्दार्थ की दृष्टि से उपयुक्त और आदरणीय है। इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला' और 'भ्रमर-गीतसार' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

पूरा हस्तलिखित रूप में 'सूरसागर' के दो रूप मिलते हैं - 'संग्रहात्मक' और संस्कृत भागवत अनुसार 'द्वादश स्कंधात्मक'। संग्रहात्मक 'सूरसागर' के भी दो रूप देखने में आते हैं। पहला, आपके-गौघाट (आगरा) पर श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य होने पर प्रथम प्रथम रचे गए भगवल्लीलात्मक पद- 'ब्रज भयौ मैहैर कें पूत, जब यै बात सुनी' से प्रारंभ होता है, दूसरा-'मथुरा-जन्म-लीला' से।

कहा जाता है, हिंदी साहित्येतिहास ग्रंथों से ओझल 'सूरसागर' के उत्पत्ति विकास का एक अलग इतिहास है, जो अब तक प्रकाश में नहीं आया है और श्री सूर के समकालीन भक्त इतिहास रचयिताओं- 'श्री गोकुलनाथ जी, श्रीहरिराय जी (सं.-1647 वि.) और श्री नाभादास जी (सं.-1642 वि.) प्रभृति में जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया है। अत: इन पूर्वा पर के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों से जाना जाता है कि श्री सूर ने सहस्रावधि पद किए, लक्षावधि पद रचे, कोई ग्रंथ नहीं रचा। बाद में अनंत-सूर-पदावली सागर कहलाई। वस्तुत: श्रीसूर, जैसा इन ऊपर लिए संदर्भ ग्रंथों से जाना जाता है, भगवल्लीला के भाव भरे उन्मुक्त गायक थे, सो नित्य नई-नई पद रचना कर, अपने प्रभु 'गोवर्धननाथ जी' के सम्मुख गाया करते थे। रचना करने वाले थे, सो नित्य सवेरे से संध्या तक गाए जाने वाले रागों में ललित रसों का रंग भरकर अपनी वाणी की तूलिका से चित्रित कर अपने को धन्य किया करते थे। अस्तु, न उनमें अपनी उन्मुक्त कृतियों को संग्रह करने का भाव था और न कई क्रम देने की उमंग। उनका कार्य तो अपने प्रभु की नाना गुनन गरूली गुणावली गाना, उसके अमृतोपम रस में निमग्न हो झूमना तथा-'एतेचांश कलापुंस: कृष्णस्तु भगवान स्वयं' (भाग-1/3/28) की नंदालय में बाल से पौगंड अवस्था तक लीलाओं में तदात्मभाव से विभोर होना था, यहाँ अपनी समस्त मुक्तक रचनाओं को एकत्र कर क्रमबद्ध करने का समय और स्थान कहाँ था।

कहा जाता है, श्री सूरदास 'एकदम अंधे थे,' तब अपनी जब-तब की समस्त रचनाओं को कैसे एकत्र करते? फिर भी सूरदास द्वारा नित्य रचे और गाये जाने वाले पदों का लेखन और संकलन अवश्य होता रहा होगा। अन्यथा वे मौलिक रूप से रचित और गाए गए पद जूप्त हो गए होते। संभवत: सूर के समकालीन शिष्य या मित्र-यदि सूर सचमुच अंधे थे तो-उन पदों को लिखते और संकलित करते रहे होंगे। अब तक उसके संग्रहात्मक या द्वादस स्कंधात्मक बनने का कोई इतिहास पूर्णत: ज्ञात नहीं है। 'गीत-संगीत-सागर' (गो. रघुनाथ, जी नामरत्न) श्री विट्ठलनाथ जी गोस्वामी, (सं. 1572 वि.) के समय श्रीमद्वल्लभाचार्य सेवित कई निधियाँ (मूर्तियाँ), आपके वंशजों द्वारा, ब्रज से बाहर चली गई थीं। यत: संप्रदाय के अनुसार 'कीर्तनों के बिना सेवा नहीं और सेवा बिना कीर्तन नहीं' अत: जहाँ जहाँ ये निधियाँ गईं, वहीं-वहीं 'कंठ' या 'ग्रंथ' रूप में अष्टछाप के कवियों की कृतियाँ भी गई और वहाँ इनके संकलित

रूप में-'नित्य कीर्तन' और 'वर्षोत्सव' नाम पड़े, ऐसा भी कहा जाता है।

सूर के सागर का 'संग्रहात्मक' रूप श्रीसूर के सम्मुख ही संकलित हो चुका था। उसकी सं. 1630 वि. की लिखी प्रति ब्रज में मिलती है। बाद के अनेक लिखित संग्रहरूप भी उसके मिलते हैं। मुद्रित रूप इसका कहीं पुराना है। पहले यह मथुरा (सं. 1840 ई.) से, बाद में आगरा (सं.-1867 ई. तीसरी बार), जयपुर (राजस्थान सं. 1865 ई.), दिल्ली (सं. 1860 ई.) और कलकत्ता से सं. 1898 ई. में लीथो प्रेसों से छपकर प्रकाशित हो चुका था। **कृष्णानंद व्यासदेव** संकलित 'रागकल्पद्रुम' भी इस समय का संग्रहात्मक सूरसागर का एक विकृत रूप है, जो संगीत के रंगों में बँटा हुआ है। ब्रजभाषा के रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि 'द्विजदेव'-अर्थात् **महाराज मानसिंह**, अयोध्या नरेश (सं. 1907 वि.) ने इसे सं. 1920 वि. में संपादित कर लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित किया था। ये सभी संग्रहात्मक रूप सूरसागर, भगवान श्रीकृष्ण की जन्मलीला गायन रूप गोकुल नंदालय में मनाए गए 'नंदमहोत्सव' से प्रारंभ होकर उनकी समस्त ब्रजलीला मथुरा आगमन, उद्धव-गोपी-संवाद, श्री राम, नरसिंह तथा वामन जयंतियाँ एवं पहले-श्री वल्लभाचार्य जी की शिष्यता से पूर्व रचे गए 'दीनता आश्रय' के पदों के बाद समाप्त हुए हैं। सूर पदों के इस प्रकार संकलन की प्रवृत्ति उनके सागर के संग्रहात्मक रूप पर ही समाप्त नहीं, वह विविध रूपों में आगे बढ़ी, जिससे उनकी पद कृति के नाना संकलित रूप हस्तलिखित तथा मुद्रित देखने में आते हैं, जो इस प्रकार हैं-दीनता आश्रय के पद, दृष्टिकुल पद, जिसे आज 'साहित्यलहरी' कहा जाता है। रामायण, बाललीला के पद, विनय पत्रिका, वैराग्यसतक, सूरछत्तीसी, सूरबहोत्तरी, सूर भ्रमरगीत, सूरसाठी, सूरदास नयन, मुरली माधुरी आदि-आदि, किंतु ये सभी संग्रह आपके संग्रहात्मक 'सागर कल्पतरु' के ही मधुर फल हैं।

श्री सूर के सागर का रूप श्री व्यास प्रणीत और शुक-मुख-निसृत 'द्वादश स्कंधात्मक' भी बना। वह कब बना, कुछ कहा नहीं जा सकता। हिंदी के साहित्येतिहास ग्रंथ इस विषय में चुप हैं। इस द्वादश स्कंधात्मक 'सूर सागर' की सबसे प्राचीन प्रति सं. 1757 वि. की मिलती है।

इसके बाद की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि सूर समुदित सागर का यह 'श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश स्कंधात्मक रूप' अठारहवीं शती के पहले नहीं बन पाया था। उसका पूर्वकथित 'संग्रहात्मक' रूप

इस समय तक काफी प्रसार पा चुका था। साथ ही इस (संग्रहात्मक) रूप की सुंदरता, सरसता और भाषा की शुद्धता एवं मनोहरता में भी कोई विशेष अंतर नहीं हो पाया था। वह सूर के समय जैसी विविध रागमयी थी वैसी ही सुंदर बनी रही, किंतु इसके इस द्वादश स्कंधात्मक रूपों में वह बात समुचित रूप से नहीं रह सकी। ज्यों ज्यों हस्तलिखित रूपों में वह आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों सूर की मंजुल भाषा से दूर हटती गई। फिर भी जिस किसी व्यक्ति ने अपना अस्तित्त्व खोकर और 'हरि, हरि, हरि हरि सुमरन करौ' जैसे असुंदर भाषाहीन कथात्मक पदों की रचना कर तथा श्री सूर के श्रीमद्वल्लभाचार्य की चरणशरण में आने से पहले रचे गए 'दीनता आश्रय' के पद विशेषों को भागवत अनुसार प्रथम स्कंध तक ही नहीं, दशम स्कंध उत्तरार्ध, एकादश और द्वादश स्कंधों को सँजोया, वह आदरणीय है।

रूपरेखा

इस द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर की 'रूपरेखा' इस प्रकार है–

प्रथम स्कंध - भक्ति की सरस व्याख्या, भागवत निर्माण का प्रयोजन, शुक उत्पत्ति, व्यास अवतार, संक्षिप्त महाभारत कथा, सूत-शौनक-संवाद, भीष्म प्रतिज्ञा, भीष्म-देह-त्याग, कृष्ण-द्वारिका-गमन, युधिष्ठिर वैराग्य, पांडवों का हिमालयगमन, परीक्षितजन्म, ऋषिशाप, कलियुग को दंड इत्यादि।

द्वितीय स्कंध - सृष्टि उत्पत्ति, विराट् पुरुष का वर्णन, चौबीस अवतारों की कथा, ब्रह्मा उत्पत्ति, भागवत चार श्लोक महिमा। साथ ही इस स्कंध के प्रारंभ में भक्ति और सत्संग की महिमा, भक्ति साधन, अत्मज्ञान, भगवान की विराट् रूप में भारती का भी यत्विंचित् उल्लेख है।

तृतीय स्कंध - उद्धव-विदुर-संवाद, विदुर को मैत्रोय द्वारा बताए गए ज्ञान की प्राप्ति, सप्तर्षि और चार मनुष्यों की उत्पत्ति, देवासुर जन्म, बाराह-अवतार-वर्णन, कर्दम-देवहूति-विवाह, कपिल मुनि अवतार, देवहूति का कपिल मुनि से भक्ति संबंधी प्रश्न, भक्तिमहिमा, देवहूति-हरि-पद-प्राप्ति।

चतुर्थ स्कंध - यज्ञपुरुष अवतार, पार्वती विवाह, ध्रुव कथा, पृथु अवतार, पुरंजन आख्यान।

पंचम स्कंध - ऋषभदेव अवतार, जड़भरत कथा, रहूगण संवाद।

षष्ठ स्कंध - अजामिल उद्धार, बृहस्पति-अवतार-कथन, वृत्रा-सुरवध, इंद्र का सिंहासन से च्युत होना, गुरुमहिमा, गुरुकृपा से इंद्र को पुनः सिंहासन प्राप्ति।

सप्तम स्कंध – नुसिंह–अवतार–वर्णन।

अष्टम स्कंध – गजेंद्रमोक्ष, कूर्मावतार, समुद्र मंथन, विष्णु भगवान का मोहिनी–रूप–धारण, वामन तथा मत्स्य अवतारों का वर्णन।

नवम स्कंध – पुरुरवा–उर्वशी–आख्यान, च्यवन ऋषि कथा, हलधर विवाह, राजा अंबरीय और सौभिर ऋषि का उपाख्यान, गंगा आगमन, परशुराम और श्री राम का अवतार, अहल्योद्धार।

दशम स्कंध (पूर्वार्ध): भगवान कृष्ण का जन्म, मथुरा से गोकुल पधारना, पूतनावध, शकटासुर तथा तृणावर्त वध, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेदन, घुटुरुन चलाना, बालवेशशोभा, चंद्रप्रस्ताव, कलेऊ, मृत्तिकाभक्षण, माखनचोर, गोदोहन, वंत्सासुर, बकासुर, अधासुरों के वध, ब्रह्मा द्वारा गो–वत्स–हरण, राधा–प्रथम–मिलन, राधा–नंदघर–आगमन, कृष्ण का राधा के घर जाना, गोचारण, धेनुकवध, कालियदमन, प्रलंबासुरवध, मुरली–चीर–हरण, पनघट रोकना, गोवर्धन पूजा, दानलीला, नेत्र वर्णन, रासलीला, राधा–कृष्ण–विवाह, मान, राधा गुरुमान, हिंडोला–लीला, वृषभासुर, केशी, भौमासुर वध, अकूर आगमन, कृष्ण का मथुरा चला जाना, कुब्जा मिलन, धोबी संहार, शल, तोषल, मुष्टिक और चाणूर का वध, धनुषभंग, कुवलयापीड़ (हाथी) वध, कंसवध, राजा उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाना, वसुदेव देवकी की कारागार से मुक्ति, यज्ञोपवीत, कुब्जाघर गमन, आदि–आदि।

दशम स्कंध (उत्तरार्ध) – जरासंध युद्ध, द्वारका निर्माण, कालियदवन दहन, मुचुकुंद उद्धार, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी विवाह, प्रद्युम्न विवाह, अनिरुद्ध विवाह, राजा मृग नृग उद्धार, बलराम जी का पुनः ब्रजगमन, सांब विवाह, कृष्ण–हस्तिनापुर–गमन, जरासंध और शिशुपाल का वध, शाल्व का द्वारका पर आक्रमण, शाल्ववध, दतवक्र का वध, बल्वलवध, सुदामाचरित्र, कुरुक्षेत्र आगमन, कृष्ण का श्रीनंद, यशोदा तथा गोपियों से मिलना, वेद और नारद स्तुतियाँ, अर्जुन–सुभद्रा–विवाह, भस्मासुर वध, भृगु परीक्षा, इत्यादि।

एकादश स्कंध – श्रीकृष्ण का उद्धव को वदरिकाश्रम भेजना, नारायण तथा हंसावतार कथन।

द्वादश स्कंध – बौद्धावतार, कल्कि–अवतार–कथन, राजा परीक्षित तथा जन्मेजय कथा, भगवत् अवतारों का वर्णन आदि।

इस प्रकार यत्र-तत्र बिखरे इस श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश-स्कंधात्मक रूप में भी, श्री सूर का विशिष्ट वांग्मय 'हरि, हरि, हरि, हरि सुमरैन करौ' जैसे अनेक अनगढ़ काँच मणियों के साथ रगड़ खा-खाकर मटमैले होकर भी कवित्व की प्रभा के साथ कोमलता, कमनीयता, कला, एवं कृष्णस्तुभगवान् स्वयं की सगुणात्मक भक्ति, उसकी भव्यता, विलक्षणता, उनके विलास, व्यंग्य और विदग्धता आदि चमक-चमककर आपके कृतित्त्व रूप सागर को, नित्य गए रूप में दर्शनीय और वंदनीय बना रहे।

2

कबीर दास की प्रमुख पुस्तकें

महात्मा कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ, जब भारतीय समाज और धर्म का स्वरूप अधंकारमय हो रहा था। भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अवस्थाएँ सोचनीय हो गयी थी। एक तरफ मुसलमान शासकों की धर्मांधता से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी और दूसरी तरफ हिंदूओं के कर्मकांडों, विधानों एवं पाखंडों से धर्म- बल का ह्रास हो रहा था। जनता के भीतर भक्ति- भावनाओं का सम्यक प्रचार नहीं हो रहा था। सिद्धों के पाखंडपूर्ण वचन, समाज में वासना को प्रश्रय दे रहे थे।

नाथपंथियों के अलखनिरंजन में लोगों का हृदय रम नहीं रहा था। ज्ञान और भक्ति दोनों तत्त्व केवल ऊपर के कुछ धनी- मनी, पढ़े- लिखे की बपौती के रूप में दिखाई दे रहा था। ऐसे नाजुक समय में एक बड़े एवं भारी समन्वयकारी महात्मा की आवश्यकता समाज को थी, जो राम और रहीम के नाम पर आज्ञानतावश लड़ने वाले लोगों को सच्चा रास्ता दिखा सके। ऐसे ही संघर्ष के समय में, मस्तमौला कबीर का प्रार्दुभाव हुआ।

कबीर या भगत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिखों ध के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है।

वे हिन्दू धर्म व इस्लाम को न मानते हुए धर्म निरपेक्ष थे। उन्होंने सामाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की थी। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपने विचार के लिए धमकी दी थी।

कबीर पंथ नामक धार्मिक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं।

जीवन

कबीर के (लगभग 14वीं-15वीं शताब्दी) जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं, जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है।

'काशी में परगट भये, रामानंद चेताये '

कबीर के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित कथन है कि कबीर को उपयुक्त गुरु की तलाश थी। वह वैष्णव संत आचार्य रामानंद को अपना अपना गुरु बनाना चाहते थे लेकिन उन्होंने कबीर को शिष्य बनाने से मना कर दिया। कबीर ने अपने मन में ठान लिया कि स्वामी रामानंद को ही हर कीमत पर अपना गुरु बनाऊंगा, इसके लिए कबीर के मन में एक विचार आया कि स्वामी रामानंद जी सुबह चार बजे गंगा स्नान करने जाते हैं, उसके पहले ही उनके जाने के मार्ग में सीढ़ियों पर लेट जाऊंगा और उन्होंने ऐसा ही किया। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगास्नान करने के लिये सीढ़ियां उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-

काशी में परगट भये, रामानंद चेताये

जीविकोपार्जन के लिए कबीर जुलाहे का काम करते थे।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है, स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए य क्योंकि लोगों की मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है। मगहर में उन्होंने अंतिम सांस ली। आज भी वहां पर मजार व समाधी स्थित है।

भाषा

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी हैं। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।

कृतियां

धर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह 'बीजक' नाम के ग्रंथ में किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं : साखी, सबद (पद), रमैनी।

साखी: संस्कृत साक्षी, शब्द का विकृत रूप है और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियां दोहों में लिखी गयी हैं पर उसमें सोरठे का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।

सबद गेय पद है, जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है य क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।

रमैनी चौपाई छंद में लिखी गयी है इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

धर्म के प्रति

साधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे- 'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।' उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुंह से भाखे और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। आप के समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्त्तिपूजा, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'।

और कभी 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे–पेड़ खजूर।'

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुँच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएं कीं इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुँचे। वहां रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहां के संत भगवान गोस्वामी के जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

'बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान। करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान।।'

वन से भाग कर बहेलिये के द्वारा खोदे हुए गड्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किस से कहे?

सारांश यह कि धर्म की जिज्ञासा सें प्रेरित हो कर भगवान गोसाई अपना घर छोड़ कर बाहर तो निकल आये और हरिव्यासी सम्प्रदाय के गड्ढे में गिर कर अकेले निर्वासित हो कर असंवाद्य स्थिति में पड़ चुके हैं।

मूर्त्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए उन्होंने एक साखी हाजिर कर दी-

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार। वा ते तो चाकी भली, पीसी खाय संसार।।

कबीर के राम

कबीर के राम तो अगम हैं और वे संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना

जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं–

व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी। रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढांचे (फ्रेम) में बंध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं। कबीर राम की अवधारणा को एक भिन्न और व्यापक स्वरूप देना चाहते थे। इसके कुछ विशेष कारण थे, जिनकी चर्चा हम इस लेख में आगे करेंगे। किन्तु इसके बावजूद कबीर राम के साथ एक व्यक्तिगत पारिवारिक किस्म का संबंध जरूर स्थापित करते हैं। राम के साथ उनका प्रेम उनकी अलौकिक और महिमाशाली सत्ता को एक क्षण भी भुलाए बगैर सहज प्रेमपरक मानवीय संबंधों के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालांकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि 'नाम रूप से बढ़कर है', लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संश्लिष्ट भावों को उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खांचे में बांधे जाने से रोकने का प्रयास किया।

कबीर के राम निर्गुण-सगुण के भेद से परे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग किया–'निर्गुण राम जपहु रे भाई।' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने 'रमता राम' नाम दिया है। अपने राम को निर्गुण विशेषण देने के बावजूद कबीर उनके साथ मानवीय प्रेम संबंधों की तरह के रिश्ते की बात करते हैं। कभी वह राम को माधुर्य भाव से अपना प्रेमी या पति मान लेते हैं तो कभी दास्य भाव से स्वामी। कभी-कभी वह राम को वात्सल्य मूर्ति के रूप में मां मान लेते हैं और

खुद को उनका पुत्र। निर्गुण-निराकार ब्रह्म के साथ भी इस तरह का सरस, सहज, मानवीय प्रेम कबीर की भक्ति की विलक्षणता है। यह दुविधा और समस्या दूसरों को भले हो सकती है कि जिस राम के साथ कबीर इतने अनन्य, मानवीय संबंधपरक प्रेम करते हों, वह भला निर्गुण कैसे हो सकते हैं, पर खुद कबीर के लिए यह समस्या नहीं है।

वह कहते भी हैं–

"संतौ, धोखा कासूं कहिये। गुनमैं निरगुन, निरगुनमैं गुन, बाट छांड़ि क्यूं बहिसे!"

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने कबीर के राम एवं कबीर की साधना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है : "कबीर का सारा जीवन सत्य की खोज तथा असत्य के खंडन में व्यतीत हुआ।" कबीर की साधना मानने से नहीं, ''जानने से आरम्भ होती है। वे किसी के शिष्य नहीं, रामानन्द द्वारा चेताये हुए चेला हैं। उनके लिए राम रूप नहीं है, दशरथी राम नहीं है, उनके राम तो नाम साधना के प्रतीक हैं। उनके राम किसी सम्प्रदाय, जाति या देश की सीमाओं में कैद नहीं है। प्रकृति के कण-कण में, अंग-अंग में रमण करने पर भी जिसे अनंग स्पर्श नहीं कर सकता, वे अलख, अविनाशी, परम तत्त्व ही राम हैं। उनके राम मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भेद-भाव के कारक नहीं हैं। वे तो प्रेम तत्त्व के प्रतीक हैं। भाव से ऊपर उठकर महाभाव या प्रेम के आराध्य हैं :-

'प्रेम जगावै विरह को, विरह जगावै पीउ, पीउ जगावै जीव को, जोइ पीउ सोई जीउ' - जो पीउ है, वही जीव है।

इसी कारण उनकी पूरी साधना 'हंस उबारन आए' की साधना है। इस हंस का उबारना पोथियों के पढ़ने से नहीं हो सकता, ढाई आखर प्रेम के आचरण से ही हो सकता है। धर्म ओढ़ने की चीज नहीं है, जीवन में आचरण करने की सतत् सत्य साधना है। उनकी साधना प्रेम से आरम्भ होती है। इतना गहरा प्रेम करो कि वही तुम्हारे लिए परमात्मा हो जाए। उसको पाने की इतनी उत्कण्ठा हो जाए कि सबसे वैराग्य हो जाए, विरह भाव हो जाए तभी उस ध्यान समाधि में पीउ जाग्रत हो सकता है। वही पीउ तुम्हारे अंर्तमन में बैठे जीव को जगा सकता है। जोई पीउ है सोई जीउ है। तब तुम पूरे संसार से प्रेम करोगे, तब संसार का प्रत्येक जीव तुम्हारे प्रेम का पात्र बन जाएगा। सारा अहंकार, सारा द्वेष दूर हो जाएगा। फिर महाभाव जगेगा। इसी महाभाव से पूरा संसार पिउ का घर हो जाता है।

सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा, सब यहि पसरा ब्रह्म पसारा।
जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहीं समाना, यह तथ कथौ गियानी।।

कबीर का साहित्यिक परिचय

कबीर साहब निरक्षर थे। उन्होंने अपने निरक्षर होने के संबंध में स्वयं 'कबीर- बीजक' की एक साखी में बताया है, जिसमें कहा गया है कि न तो मैं ने लेखनी हाथ में लिया, न कभी कागज और स्याही का ही स्पर्श किया। चारों युगों की बातें उन्होंने केवल अपने मुँह द्वारा जता दिया हैं–

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात।।

संत मत के समस्त कवियों में, कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक माने जाते हैं। उन्होंने कविताएँ प्रतिज्ञा करके नहीं लिखी और न उन्हें पिंगल और अलंकारों का ज्ञान था। लेकिन उन्होंने कविताएँ इतनी प्रबलता एवं उत्कृष्टता से कही है कि वे सरलता से महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं। उनकी कविताओं में संदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान है। ये संदेश आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा, पथ- प्रदर्शण तथा संवेदना की भावना सन्निहित है। अलंकारों से सुसज्जित न होते हुए भी आपके संदेश काव्यमय हैं। तात्विक विचारों को इन पद्यों के सहारे सरलतापूर्वक प्रकट कर देना ही आपका एक मात्र लक्ष्य था–

तुम्ह जिन जानों गीत हे यहु निज ब्रह्म विचार
केवल कहि समझाता, आतम साधन सार रे।।

कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करनेवाले तथा मर्यादा के रक्षक कवि थे। आप अपनी काव्य कृतियों के द्वारा पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना चाहते थे।

हरि जी रहे विचारिया साखी कहो कबीर।
यौ सागर में जीव हैं जे कोई पकड़ै तीर।।

कवि के रूप में कबीर जीव के अत्यंत निकट हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सहजता को प्रमुख स्थान दिया है। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है। उनके काव्य का आधार

यथार्थ है। उन्होंने स्वयं स्पष्ट रूप से कहा है कि मैं आँख का देखा हुआ कहता हूँ और तू कागज की लेखी कहता है–

मैं कहता हूँ आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।

वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज- सुधारक एवं प्रगतिशील दार्शनिक तथा आवश्यकतानुसार कवि थे। उन्होंने अपनी काव्य रचनाएँ इस प्रकार कही है कि उसमें आपके व्यक्तित्त्व का पूरा- पूरा प्रतिबिंब विद्यमान है।

कबीर की प्रतिपाद्य शैली को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है– इनमें प्रथम रचनात्मक, द्वितीय आलोचनात्मक। रचनात्मक विषयों के अंतर्गत सतगुरु, नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य, क्षमा, संतोष आदि पर व्यावहारिक शैली में भाव व्यक्त किया गया है। दूसरे पक्ष में वे आलोचक, सुधारक, पथ- प्रदर्शक और समन्वयकर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इस पक्ष में उन्होंने चेतावनी, भेष, कुसंग, माया, मन, कपट, कनक, कामिनी आदि विषयों पर विचार प्रकट किये हैं।

काव्यरूप एवं संक्षिप्त परिचय–

कबीर की रचनाओं के बारें में कहा जाता है कि संसार के वृक्षों में जितने पत्ते हैं तथा गंगा में जितने बालू- कण हैं, उतनी ही संख्या उनकी रचनाओं की है–

जेते पत्र वनस्पति औ गंगा की रेन।
पंडित विचारा का कहै, कबीर कही मुख वैन।।

विभिन्न समीक्षकों तथा विचारकों ने कबीर के विभिन्न संग्रहों का अध्ययन करके निम्नलिखित काव्यरूप पाये हैं–

साखी,
पद,
रमेनी,
चौंतीसा,
वावनी,
विप्रमतीसी,
वार,
थिंती,

चाँवर,
बसंत,
हिंडोला,
बेलि,
कहरा,
विरहुली,
उलटवाँसी।

साखी

साखी रचना की परंपरा का प्रारंभ **गुरु गोरखनाथ** तथा **नामदेव जी** के समय से प्राप्त होता है। साखी काव्यरूप के अंतर्गत प्राप्त होने वाली, सबसे प्रथम रचना गोरखनाथ की जोगेश्वरी साखी है। कबीर की अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली है। प्रतिपाद्य के एक- एक अंग को लेकर इस निरक्षर कवि ने सैकड़ों साखियों की रचना की है। प्रत्येक साखी में अभिनवता बड़ी कुशलता से प्रकट किया गया है। उन्होंने इसका प्रयोग नीति, व्यवहार, एकता, समता, ज्ञान और वैराग्य आदि की बातों को बताने के लिए किया है। अपनी साखियों में कबीर ने दोहा छंद का प्रयोग सर्वाधिक किया है।

कबीर की साखियों पर गोरखनाथ और नामदेव जी की साखी का प्रभाव दिखाई देता है। गोरखनाथ की तरह से कबीर ने भी अपनी सखियों में दोहा जैसे छोटे छंदों में अपने उपदेश दिये।

संत कबीर की रचनाओं में साखियाँ सर्वाधिक पायी जाती है। कबीर बीजक में 353 साखियाँ, कबीर ग्रंथ वाली में 919 साखियाँ हैं। आदिग्रंथ में साखियों की संख्या 243 है, जिन्हें श्लोक कहा गया है।

प्राचीन धर्म प्रवर्त्तकों के द्वारा, साखी शब्द का प्रयोग किया गया। ये लोग जब अपने गुरुजनों की बात को अपने शिष्यों अथवा साधारणजनों को कहते, तो उसकी पवित्रता को बताने के लिए साखी शब्द का प्रयोग किया करते थे। वे साखी देकर, यह सिद्ध करना चाहते थे कि इस प्रकार की दशा का अनुभव अमुक- अमुक पूर्ववर्ती गुरुजन भी कर चुके हैं। अत: प्राचीन धर्म प्रवर्तकों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को शिष्यों के समक्ष, साक्षी रूप में उपस्थित करते समय जिस काव्यरूप का जन्म हुआ, वह साखी कहलाया।

संत कबीर की साखियाँ, निर्गुण साक्षी के साक्षात्कार से उत्पन्न भावोन्मत्तता, उन्माद, ज्ञान और आनंद की लहरों से सराबोर है। उनकी साखियाँ ब्रह्म विद्या बोधिनी, उपनिषदों का जनसंस्करण और लोकानुभव की पिटारी है। इनमें संसार की असारता, माया मोह की मृग- तृष्णा, कामक्रोध की क्रूरता को भली- भांति दिखाया गया है। ये सांसारिक क्लेश, दुख और आपदाओं से मुक्त कराने वाली जानकारियों का भण्डार है। संत कबीर के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन उनकी साखियाँ हैं–

साखी आंखी ग्यान को समुझि देखु मन माँहि
बिन साखी संसार का झगरा छुटत नाँहि।।

विषय की दृष्टि से कबीर साहब की साखियों को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया गया है–

1. लौकिक भाव प्रधान,
2. परलौकिक भाव प्रधान।

लौकिक भाव प्रधान साखियाँ भी तीन प्रकार की है–

1. संतमत स्वरूप बताने वाली,
2. पाखण्डों का विरोध करने वाली,
3. व्यवहार प्रधान।

संतमत का स्वरूप बताने वाली साखियाँ–

कबीर साहब ने अपनी कुछ साखियों में संत और संतमत के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं–

निर बेरी निहकामता साई सेती नेह।
विषिया सूँन्यारा रहे संतरि को अंग एह।।

कबीर साहब की दृष्टि में संत का लक्ष्य धन संग्रह नहीं है–

सौंपापन कौ मूल है एक रुपैया रोक।
साधू है संग्रह करै, हारै हरि सा थोक।
संत व बांधै गाँठरी पेट समाता लेई।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगै तब दई।

संत अगर निर्धन भी हो, तो उसे मन छोटा करने की आवश्यकता नहीं है–

सठगंठी कोपीन है साधू न मानें संक।
राम अमल माता रहे गिठों इंद्र को रंक।

कबीर साहब परंपरागत रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मिथ्याप्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीति- रिवाजों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने हिंदू- मुसलमान दोनों में ही फैली हुई कुरीतियों का विरोध अपनी अनेक साखियों में किया है।

व्यवहार प्रधान साखियाँ

कबीर साहब की व्यवहार प्रधान साखियाँ, नीति और उपदेश प्रधान है। इसमें संसभू के प्रत्येक क्षेत्र में उचित व्यवहार की रीति बताई गई हैं। इन साखियों में मानव मात्र के कल्याणकारी अनुभव का अमृत छिपा हुआ है। पर निंदा, असत्य, वासना, धन, लोभ, क्रोध, मोह, मदमत्सर, कपट आदि का निषेध करके, वे सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य, संतोष, क्षमा, समदर्शिता, परोपकार तथा मीठे वाचन आदि के लिए आग्रह किया गया है। वे त्याज्य कुकर्मों को गिना कर बताते हैं–

जुआ, चोरी, मुखबरी, व्याज, घूस, परमान।
जो चाहे दीदार को एती वस्तु निवार।।

विपत्ति में धैर्य धारण करने के लिए कहते हैं–

देह धरे का दंड है सब काहू पै होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञानकरि मूरख भुगतै रोय।।

वह अपनी में बाबू संयम पर बल देते हुए कहते हैं–

ऐसी बानि बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय।

पारलौकिक भाव प्रधान साखियाँ

संत कबीर साहब इस प्रकार की अपनी साखियों में नैतिक, आध्यात्मिक, सांसारिक, परलौकिक इत्यादि विषयों का वर्णन किया है।

कुछ साखियाँ–

राम नाम जिन चीन्हिया, झीना पन तासु।
नैन न आवै नींदरी, अंग न जायें मासु।
बिन देखे वह देसकी, बात कहे सो कूर।
आपुहि खारी खात है, बैचत फिरे कपूर।

पद (शब्द)

संत कबीर ने अपने अनुभवों, नीतियों एवं उपदेशों का वर्णन, पदों में भी किया है। पद या शब्द भी एक काव्य रूप है, जिसको प्रमुख दो भागों में बाँटा गया है–

- लौकिक भाव प्रधान,
- परलौकिक भाव प्रधान।

लौकिक भाव प्रधान पदों में सांसारिक भावों एवं विचारों का वर्णन किया गया है। इनको भी दो भागों में विभाजित किया गया है–

- धार्मिक पाखण्डों का खंडन करने वाले पद।
- उपदेशात्मक और नीतिपरक पद।

संत कबीर जातिवाद, ऊँच- नीच की भावना एवं दिखावटी धार्मिक क्रिया- कलापों के घोर विरोधी थे। उन्होंने विभिन्न धर्मों की प्रचलित मान्यताओं तथा उपासना पद्धतियों की अलग- अलग आलोचना की है। वे वेद और कुरान के वास्तविक ज्ञान और रहस्य को जानने पर बल देते हैं–

वेद कितेब कहौ झूठा।
झूठा जो न विचारै।।
झंखत बकत रहहु निसु बासर, मति एकौ नहिं जानी।
सकति अनुमान सुनति किरतु हो, मैं न बदौगा भाई।।
जो खुदाई तेरि सुनति सुनति करतु है, आपुहि कटि कयों न आई।
सुनति कराय तुरुक जो होना, औरति को का कहिये।।

रमैनी

रमैनी भी संत कबीर द्वारा गाया गया काव्यरूप है। इसमें चौपाई दो छंदों का प्रयोग किया गया है। रमैनी कबीर साहब की सैद्धांतिक रचनाएँ हैं। इसमें परमतत्त्व, रामभक्ति, जगत और ब्रह्म इत्यादि के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है–

जस तू तस तोहि कोई न जाना। लोक कहै सब आनाहि आना।
वो है तैसा वोही जाने। ओही आहि आहि नहिं आने।।

संत कबीर राम को सभी अवतारों से परे मानते हैं–

ना दसरथ धरि औतरि आवा।

ना लंका का राव सतावा।।
अंतर जोति सबद एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।।
ते तिरिये भग लिंग अनंता। तेउ न जाने आदि औ अंतर।।
एक रमैनी में वे मुसलमानों से प्रश्न पूछते हैं।
दर की बात कहाँ दरबेसा। बादशाह है कवने भेष।
कहां कंच कहँ करै मुकाया। मैं तोहि पूंछा मुसलमाना।।
लाल गरेद की नाना बना। कवर सुरहि को करहु सलाया।।
काजी काज करहु तुम कैसा। घर- घर जबह करवाहु भैसा।।

चौंतीसा

चौंतीसा नामक काव्यरूप केवल 'कबीर बीजक' में ही प्रयोग किया गया है। इसमें देवनागरी वर्णमाला के स्वरों को छोड़कर, केवल व्यंजनों के आधार पर रचनाएँ की गई हैं–

पापा पाप करै सम कोई। पाप के करे धरम नहिं होई।
पापा करै सुनहु रे भाई। हमरे से इन किछवो न पाई।
जो तन त्रिभुवन माहिं छिपावै। तत्तहि मिले तत्त सो पावै।
थाथा थाह थाहि नहिं जाई। इथिर ऊथिर नाहिं रहाई।

बावनी

बावनी वह काव्यरूप है, जिसकी द्विपदियों का प्रारंभ नागरी लिपि के बावन वर्णों में से प्रत्येक के साथ क्रमशः होता है। बावनी को इसके संगीतनुसार गाया जाने का रिवाज पाया जाता है। विषय की दृष्टि से यह रचनाएँ आध्यात्मिकता से परिपूर्ण ज्ञात होता है।

ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै। घर महँ जग्य प्रतिग्रह आनै
जे सिरजा तेहि नहिं पहचानैं। करम भरम ले बैठि बखानै।
ग्रहन अमावस अवर दुईजा।
सांती पांति प्रयोजन पुजा।।

विप्रमतीसी

विप्रमतीसी नामक काव्य रूप भी केवल 'कबीर बीजक' में पाया जाता

है। इसमें ब्राह्मणों के दपं तथा मिथ्याभिमान की आलोचना की गई है। इसका संबंध विप्रमति (ब्राह्मणों की बुद्धि) से बताया जाता है।

ब्राह्मणों की मति की आलोचना करने के लिए, तीस पंक्तियों में गठित काव्यरूप को विप्रमतीसी कहा गया है।

वार

सप्ताह के सातों वारों (दिनों) के नामों को क्रमशः लेकर, की गई उपदेशात्मक रचनाओं वालों काव्यरूप को 'वार' कहा गया है। यह काव्य रूप की रचना केवल आदिग्रंथ में ही प्राप्त होती है।

थिंती

इस काव्य रूप का प्रयोग तिथियों के अनुसार छंद रचना करके साधना की बातें बताने के लिए किया गया है। संत कबीर का यह काव्य रूप भी केवल आदिग्रंथ में पाया जा सकता है।

चाँचर

चाँचर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित काव्यरूप है। **कालीदास** तथा **बाणभट्ट** की रचनाओं में चर्चरी गान का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में इसको चर्चरी या चाँचरी कहा जाता था। संत कबीर ने भी अपनी रचनाओं में इसको अपनाया है। 'कबीर बीजक' में यह काव्य रूप प्राप्त होता है। कहा जाता है कि कबीर के समय में इसका पूर्ण प्रचलन था। कबीर ने इसका प्रयोग आध्यात्मिक उपदेशों को साधारण जन को पहुँचानें के लिए किया है।

जारहु जगका नेहरा, मन का बौहरा हो–
जामें सोग संतान, समुझु मन बोरा हो।
तन धन सों का गर्वसी, मन बोरा हो।
भसम-किरिमि जाकि, समुझु मन बौरा हो।।
बिना मेवका देव धरा, मन बौरा हो।
बिनु करगिल की इंट, समुझु मन बौरा हो।।

बसंत

संत कबीर साहब का एक अन्य काव्यरूप बसंत है। 'बीजक', 'आदिग्रंथ' और 'कबीर ग्रंथावली' तीनों में इसको देखा जा सकता है। बसंत ऋतु में, अभितोल्लास के साथ गाई जाने वाली पद्यों को फागु, धमार, होली या बसंत कहा जाता है। लोकप्रचलित काव्यरूप को ग्रहण कर, अपने उद्देश्य को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए किया है। एक पत्नी अपने पति की प्रशंसा करते हुए कहती है–

भाई मोर मनुसा अती सुजान, धद्य कुटि- कुटि करत बिदान।
बड़े भोर उठि आंगन बाढ़ु, बड़े खांच ले गोबर काढ़
बासि- भात मनुसे लीहल खाय, बड़ धोला ले पानी को गाय
अपने तिरिया बाधों पाट, ले बेचैंगी हाटे हाट
कहँहि कबिर ये हरिक काज, जोइया के डिंग रहिकवनि लाज।।

हिंडोला

सावन के महीने में महिलाएँ हिंडोला झूलने के साथ- साथ, गीत भी गाती है। इसी गीत को अनेक स्थानों पर हिंडोला के नाम से जाना जाता है। संत कबीर ने इसी जनप्रचलित काव्यरूप को अपने ज्ञानोपदेश का साधन बनाया है। वह पूरे संसार को एक हिंडोला मानते हैं। वे इस प्रकार वर्णन करते हैं–

भ्रम का हिंडोला बना हुआ है। पाप पुण्य के खंभे हैं। माया ही मेरु हैं, लोभ का मरुषा है विषय का भंवरा, शुभ-अशुभ की रस्सी तथा कर्म की पटरी लगी हुई है। इस प्रकार कबीर साहब समस्त सृष्टि को इस हिंडोले पर झूलते हुए दिखाना चाहते हैं–

भरम- हिंडोला ना, झुलै सग जग आय।
पाप- पुण्य के खंभा दोऊ मेरु माया मोह।
लोभ मरुवा विष भँवरा, काम कीला ठानि।
सुभ- असुभ बनाय डांडी, गहैं दोनों पानि।
काम पटरिया बैठिके, को कोन झुलै आनि।
झुले तो गन गंधर्व मुनिवर,झुलै सुरपति इंद
झुलै तो नारद सारदा, झुलै व्यास फनींद।

बेलि

संत कबीर की बेलि उपदेश प्रधान काव्यरूप है। इसके अंतर्गत सांसारिक मोह ममता में फँसे जीव को उपदेश दिया गया है। 'कबीर बीजक' में दो रचनाएँ बेलि नाम से जानी जाती है। इसकी पंक्ति के अंत में 'हो रमैया राम' टेक को बार- बार दुहराया गया है।

कबीर साहब की एक बेलि–

हंसा सरवर सरीर में, हो रमैया राम।
जगत चोर घर मूसे, हो रमैया राम।।
जो जागल सो भागल हो, रमैया राम।
सावेत गेल बिगोय, हो रमैया राम।।

कहरा

कहरा काव्यरूप में क्षणिक संसार के मोह को त्याग का राम का भजन करने पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत यह बताया जाता है कि राम के अतिरिक्त अन्य देवी- देवताओं की पूजा करना व्यर्थ है। यह कबीर की रचनाओं का जन- प्रचलित रूप है–

रामनाम को संबहु बीरा, दूरि नाहिं दूरि आसा हो।
और देवका पूजहु बौरे, ई सम झूठी आसा हो।
ऊपर उ कहा भौ बौरे, भीटर अजदूँ कारो हो।
तनके बिरघ कहा भौ वौरे, मनुपा अजहूँ बारो हो।

बिरहुली

बिरहुली का अर्थ सर्पिणी है। यह शब्द बिरहुला से बना है, जिसका अर्थ सपं होता है। यह शब्द लोक में सपं के विष को दूर करने वाले गायन के लिए प्रयुक्त होता था। यह गरुड़ मंत्र का प्राकृत नाम है। गाँव में इस प्रकार के गीतों को विरहुली कहा जाता है। कबीर साहब की बिरहुली में विषहर और विरहुली दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। मनरुपी सपं के डस लेने पर कबीर ने बिरहुली कहा–

आदि अंत नहिं होत बिरहुली। नहिं जरि पलौ पेड़ बिरहुली।।
निसु बासर नहिं होत बिरहुली। पावन पानि नहिं भूल बिरहुली।।

ब्रह्मादिक सनकादि बिरहुली। कथिगेल जोग आपार बिरहुली।।
बिषहा मंत्र ने मानै बिरहुली। गरुड़ बोले आपार बिरहुली।।

उलटवाँसी

बंधी बधाई विशिष्ट अभिव्यंजना शैली के रूप में, उलटवाँसी भी एक काव्यरूप है। इसमें आटयात्मिक बातों का लोक विपरीत ढ़ंग से वर्णन किया जाता है। इसमें वक्तव्य विषय की प्रस्तुत करने का एक विशष ढंग होता है–

तन खोजै तब पावै रे।
उलटी चाल चले गे प्राणी, सो सरजै घर आवेरो
धर्म विरोध संबंधी उलटवाँसिया:
अम्बर बरसै धरती भीजे, यहु जानैं सब कोई।
धरती बरसे अम्बर भीजे, बूझे बिरला कोई।
मैं सामने पीव गोहनि आई।
पंच जना मिलिमंडप छायौ, तीन जनां मिलि लगन लिखाई।

सामान्यरूप में कबीर साहब ने जन- प्रचलित काव्यरूप को अपनाया है। जन- प्रचलित होने के कारण ही सिंहों, नाथों, संतों और भक्तों के द्वारा इनको ग्रहण किया गया।

विचारों और भावों के साथ ही, काव्यरूपों के क्षेत्र में भी कबीर साहब को आदर्श गुरु तथा मार्गदर्शक माना गया है। परवर्ती संतों तथा भक्तों ने उनके विचारों और भावों के साथ- साथ काव्यरूपों को भी अपनाया। कबीर साहब ने इन काव्यरुपों को अपना करके महान और अमर बना दिया।

कबीर के काव्य में दाम्पत्य एवं वात्सल्य के द्योतक प्रतीक पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में सांकेतिक, प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक, रूपात्मक प्रतीक तथा प्रतीकात्मक उलटवाँसियों के सुंदर उदाहरण पाए जाते हैं।

साखी

साखी संस्कृत 'साक्षित' (साक्षी) का रूपांतर है। संस्कृत साहित्य में आँखों से प्रत्यक्ष देखने वाले के अर्थ में साक्षी का प्रयोग हुआ है। कालिदास ने कुमारसंभव (5,60) में इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है। सिद्धों के अपभ्रंश साहित्य में भी प्रत्यक्षदर्शी के रूप में साखी का प्रयोग हुआ है, जैसे 'साखि करब जालंधर पाए' (सिद्ध कण्हपा)।

आगे चलकर नाथ परंपरा में गुरुवचन ही साखी कहलाने लगे। इनकी रचना का सिलसिला गुरु गोरखनाथ से ही प्रारंभ हो गया जान पड़ता है, क्योंकि खोज में कभी-कभी जोगेश्वर साखी जैसे पद्य संग्रह मिल जाते हैं।

आधुनिक देशी भाषाओं में विशेषत: हिंदी निर्गुण संतों में साखियों का व्यापक प्रचार निस्संदेह कबीर द्वारा हुआ। गुरुवचन और संसार के व्यावहारिक ज्ञान को देने वाली रचनाएँ साखी के नाम से अभिहित होने लगीं। कबीर ने कहा भी है, साखी आँखी ज्ञान की। कबीर के पूर्ववर्ती संत नागदेव की साखी नामक हस्तलिखित प्रति भी मिली है परंतु उसका संकलन उत्तर भारत, संभवत: पंजाब में हुआ होगा, क्योंकि महाराष्ट्र में नामदेव की वाणी पद या अभग ही कहलाती है, साखी नहीं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार दादूदयाल के शिष्य **रज्जब** ने अपने गुरु की साखियों को अंगों में विभाजित किया। रज्जब का काल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी है-कबीर के लगभग सौ वर्ष बाद। कबीर वचनावली में साखियाँ विभिन्न अंगों में पाई जाती हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कबीर वचनावली का संग्रह रज्जब के पश्चात् हुआ होगा। कबीर ने तो 'मसि कागद छूयो' नहीं अतएवं संभावना यही है कि उनके परवर्ती शिष्यों ने अपने गुरु की साखियों-सिखावनी-को विभिन्न अंगों में विभाजित कर दिया होगा।

साखी अपभ्रंश काल से बहुप्रचलित छंद 'दूहा' (दोहा) में लिखी जाती रही है अत: 'दूहा' का पर्याय भी समझी जाती रही है परंतु तुलसीदास के समय तक वह दोहा का पर्याय नहीं रह गई।

'साखी', सबदी, दोहरा, कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं अधम कवि, निंदहिं वेद पुराण।।

तुलसीदास का समय ईसा की सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी है। प्रतीत होता है कि कबीर के समय से अथवा उनसे भी पहले साखी दोहा के अतिरिक्त चौपाई, चौपई, सार, छप्पय, हरिपद आदि छंदों में भी लिखी जाने लगी थी। 'गुरु ग्रंथसाहब' में साखी को सलोकु कहा गया है।

मराठी साहित्य में भी हिंदी के प्रभाव से 'साकी' या 'साखी' का चलन हो गया था। वहाँ भी पहले वह 'दोहरा' छंद में लिखी जाती थी। पर क्रमश: अन्य छंदों में भी प्रयुक्त होने लगी। तुलसीदास के समान मराठी संत स्वामी रामदास ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ दासबोध में उसकी अन्य काव्य प्रकारों से पृथक् गणना की है-

'नाना पदें, नाना श्लोक,
नाना वीर, नाना कड़क,
नाना साख्या, दोहरे अनेक,
नामानिधान।'

ना. ग. जोशी ने अपनी मराठी छंदोरचना में किसी भी लयबद्ध उक्ति का नाम 'साखी' निरूपित किया हैं।

3

तुलसीदास की प्रमुख पुस्तकें

गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्य के महान कवि थे। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है। श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। रामचरितमानस लोक ग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46वाँ स्थान दिया गया।

जन्म

इनका जन्म स्थान विवादित है। कुछ लोग मानते हैं कि इनका जन्म सोरों शूकरक्षेत्र, वर्तमान में कासगंज (एटा) उत्तर प्रदेश में हुआ था। कुछ विद्वान् इनका जन्म राजापुर जिला बाँदा (वर्तमान में चित्रकूट) में हुआ मानते हैं, जबकि कुछ विद्वान तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर को मानने के पक्ष में हैं।

राजापुर उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिला के अंतर्गत स्थित एक गाँव है। वहाँ आत्माराम दुबे नाम के एक प्रतिष्ठित संध्या नंददास भक्तिकाल में पुष्टिमार्गीय अष्टछाप के कवि नंददास जी का जन्म जनपद- कासगंज के सोरों शूकरक्षेत्र अन्तर्वेदी रामपुर (वर्त्तमान- श्यामपुर) गाँव निवासी भारद्वाज गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण पं. सच्चिदानंद शुक्ल के पुत्र पं. जीवाराम शुक्ल की पत्नी चंपा के गर्भ

से सम्वत्- 1572 विक्रमी में हुआ था। पं. सच्चिदानंद के दो पुत्र थे, पं. आत्माराम शुक्ल और पं. जीवाराम शुक्ल। पं. आत्माराम शुक्ल एवं हुलसी के पुत्र का नाम महाकवि गोस्वामी तुलसीदास था, जिन्होंने श्रीरामचरितमानस महाग्रंथ की रचना की थी। नंददास जी के छोटे भाई का नाम चँददास था। नंददास जी, तुलसीदास जी के सगे चचेरे भाई थे। नंददास जी के पुत्र का नाम कृष्णदास था। नंददास ने कई रचनाएँ- रसमंजरी, अनेकार्थमंजरी, भागवत्-दशम स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्द्धन लीला, सुदामा चरित, विरहमंजरी, रूप मंजरी, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, भँवर गीत, सिद्धांत पंचाध्यायी, नंददास पदावली हैं। ब्राह्मण रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम हुलसी था। संवत् 1511 के श्रावण मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि के दिन अभुक्त मूल नक्षत्र में इन्हीं दम्पति के यहाँ तुलसीदास का जन्म हुआ। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार शिशु बारह महीने तक माँ के गर्भ में रहने के कारण अत्यधिक हृष्ट पुष्ट था और उसके मुख में दाँत दिखायी दे रहे थे। जन्म लेने के साथ ही उसने राम नाम का उच्चारण किया जिससे उसका नाम रामबोला पड़ गया। उनके जन्म के दूसरे ही दिन माँ का निधन हो गया। पिता ने किसी और अनिष्ट से बचने के लिये बालक को चुनियाँ नाम की एक दासी को सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो गये। जब रामबोला साढे पाँच वर्ष का हुआ तो चुनियाँ भी नहीं रही। वह गली-गली भटकता हुआ अनाथों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया।

बचपन

भगवान शंकरजी की प्रेरणा से रामशैल पर रहनेवाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने रामबोला के नाम से बहुचर्चित हो चुके इस बालक को ढूँढ निकाला और विधिवत् उसका नाम तुलसीराम रखा। तदुपरान्त वे उसे अयोध्या (उत्तर प्रदेश) ले गये और वहाँ संवत् 1561 माघ शुक्ला पंचमी (शुक्रवार) को उसका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कराया। संस्कार के समय भी बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्री-मन्त्र का स्पष्ठ उच्चारण किया, जिसे देखकर सब लोग चकित हो गये। इसके बाद नरहरि बाबा ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके बालक को राम-मन्त्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्याध्ययन कराया। बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वह एक ही बार में गुरु-मुख से जो सुन लेता, उसे वह कंठस्थ हो

जाता। वहाँ से कुछ काल के बाद गुरु-शिष्य दोनों शूकरक्षेत्र (सोरों) पहुँचे। वहाँ नरहरि बाबा ने बालक को राम-कथा सुनायी किन्तु वह उसे भली-भाँति समझ न आयी।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी, गुरुवार, संवत् 1583 को 29 वर्ष की आयु में राजापुर से थोड़ी ही दूर यमुना के उस पार स्थित एक गाँव की अति सुन्दरी भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावली के साथ उनका विवाह हुआ। चूँकि गौना नहीं हुआ था अत: कुछ समय के लिये वे काशी चले गये और वहाँ शेषसनातन जी के पास रहकर वेद-वेदांग के अध्ययन में जुट गये। वहाँ रहते हुए अचानक एक दिन उन्हें अपनी पत्नी की याद आयी और वे व्याकुल होने लगे। जब नहीं रहा गया तो गुरूजी से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि राजापुर लौट आये। पत्नी रत्नावली चूँकि मायके में ही थी क्योंकि तब तक उनका गौना नहीं हुआ था अत: तुलसीराम ने भयंकर अँधेरी रात में उफनती यमुना नदी तैरकर पार की और सीधे अपनी पत्नी के शयन-कक्ष में जा पहुँचे। रत्नावली इतनी रात गये अपने पति को अकेले आया देख कर आश्चर्यचकित हो गयी। उसने लोक-लाज के भय से जब उन्हें चुपचाप वापस जाने को कहा तो वे उससे उसी समय घर चलने का आग्रह करने लगे। उनकी इस अप्रत्याशित जिद से खीझकर रत्नावली ने स्वरचित एक दोहे के माध्यम से जो शिक्षा उन्हें दी उसने ही तुलसीराम को तुलसीदास बना दिया। रत्नावली ने जो दोहा कहा था वह इस प्रकार है–

अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति !
नेकु जो होती राम से, तो काहे भव-भीत?

यह दोहा सुनते ही उन्होंने उसी समय पत्नी को वहीं उसके पिता के घर छोड़ दिया और वापस अपने गाँव राजापुर लौट गये। राजापुर में अपने घर जाकर जब उन्हें यह पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में उनके पिता भी नहीं रहे और पूरा घर नष्ट हो चुका है तो उन्हें और भी अधिक कष्ट हुआ। उन्होंने विधि-विधान पूर्वक अपने पिता जी का श्राद्ध किया और गाँव में ही रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे।

भगवान श्री राम जी से भेंट

कुछ काल राजापुर रहने के बाद वे पुन: काशी चले गये और वहाँ की जनता को राम-कथा सुनाने लगे। कथा के दौरान उन्हें एक दिन मनुष्य के वेष

में एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया। हनुमान जी से मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमान्जी ने कहा- 'तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी दर्शन होंगें।' इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े।

चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने रामघाट पर अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले ही थे कि यकायक मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदास उन्हें देखकर आकर्षित तो हुए, परन्तु उन्हें पहचान न सके। तभी पीछे से हनुमान जी ने आकर जब उन्हें सारा भेद बताया तो वे पश्चाताप करने लगे। इस पर हनुमान जी ने उन्हें सात्वना दी और कहा प्रात:काल फिर दर्शन होंगे।

संवत 1607 की मौनी अमावस्या को बुधवार के दिन उनके सामने भगवान श्रीराम-भगवान श्री राम जी पुन: प्रकट हुए। उन्होंने बालक रूप में आकर तुलसीदास से कहा-'बाबा! हमें चन्दन चाहिये क्या आप हमें चन्दन दे सकते हैं?' हनुमान जी ने सोचा, कहीं वे इस बार भी धोखा न खा जायें, इसलिये उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा:

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर।

तुलसीदास भगवान श्री राम जी की उस अद्‌भुत छवि को निहार कर अपने शरीर की सुध-बुध ही भूल गये। अन्ततोगत्वा भगवान ने स्वयं अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास जी के मस्तक पर लगाया और अर्न्तध्यान हो गये।

संस्कृत में पद्य-रचना

संवत् 1628 में वह हनुमान जी की आज्ञा लेकर अयोध्या की ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयाग में माघ मेला लगा हुआ था। वे वहाँ कुछ दिन के लिये ठहर गये। पर्व के छ: दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकरक्षेत्र में अपने गुरु से सुनी थी। माघ मेला समाप्त होते ही तुलसीदास जी प्रयाग से पुन: वापस काशी आ गये और वहाँ के प्रहलादघाट पर एक ब्राह्मण

के घर निवास किया। वहीं रहते हुए उनके अन्दर कवित्व-शक्ति का प्रस्फुरण हुआ और वे संस्कृत में पद्य-रचना करने लगे। परन्तु दिन में वे जितने पद्य रचते, रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदास जी को स्वप्न हुआ। भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचना करो। तुलसीदास जी की नींद उचट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदास जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इस पर प्रसन्न होकर शिव जी ने कहा- 'तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिन्दी में काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।' इतना कहकर गौरीशंकर अन्तर्धान हो गये। तुलसीदास जी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर काशी से सीधे अयोध्या चले गये।

रामचरितमानस की रचना

संवत् 1631 का प्रारम्भ हुआ। दैवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में यह अद्‌भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। संवत् 1633 के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक विश्वनाथ-मन्दिर में रख दी गयी। प्रातःकाल जब मन्दिर के पट खोले गये तो पुस्तक पर लिखा हुआ पाया गया-सत्यं शिवं सुन्दरम् जिसके नीचे भगवान शंकर की सही (पुष्टि) थी। उस समय वहाँ उपस्थित लोगों ने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की आवाज भी कानों से सुनी।

इधर काशी के पण्डितों को जब यह बात पता चली तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बनाकर तुलसीदास जी की निन्दा और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुराने के लिये दो चोर भी भेजे। चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदास जी की कुटी के आसपास दो युवक धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। दोनों युवक बड़े ही सुन्दर क्रमशः श्याम और गौर वर्ण के थे। उनके दर्शन करते ही चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया और भगवान के भजन में लग गये। तुलसीदास जी ने

अपने लिये भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा समान लुटा दिया और पुस्तक अपने मित्र टोडरमल (अकबर के नौरत्नों में एक) के यहाँ रखवा दी। इसके बाद उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति से एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की गयीं और पुस्तक का प्रचार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

इधर काशी के पण्डितों ने और कोई उपाय न देख श्री मधुसूदन सरस्वती नाम के महापण्डित को उस पुस्तक को देखकर अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। मधुसूदन सरस्वती जी ने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उस पर अपनी ओर से यह टिप्पणी लिख दी-

आनन्दकानने ह्यास्मिंजंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता।।

इसका हिन्दी में अर्थ इस प्रकार है-'काशी के आनन्द-वन में तुलसीदास साक्षात तुलसी का पौधा है। उसकी काव्य-मंजरी बड़ी ही मनोहर है, जिस पर श्रीराम रूपी भँवरा सदा मँडराता रहता है।'

पण्डितों को उनकी इस टिप्पणी पर भी संतोष नहीं हुआ। तब पुस्तक की परीक्षा का एक अन्य उपाय सोचा गया। काशी के विश्वनाथ-मन्दिर में भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है। अब तो सभी पण्डित बड़े लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा माँगी और भक्ति-भाव से उनका चरणोदक लिया।

मृत्यु

तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात् घाट असीघाट पर रहने लगे तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा। तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया। हनुमान जी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनय-पत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया।

संवत् 168. में श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को तुलसीदास जी ने 'राम-राम' कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया।

तुलसी-स्तवन

तुलसीदास जी की हस्तलिपि अत्यधिक सुन्दर थी लगता है जैसे उस युग में उन्होंने कैलोग्राफी की कला आती थी। उनके जन्म-स्थान राजापुर के एक मन्दिर में श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड की एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है।

रचनाएँ

अपने 126 वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में तुलसीदास ने कालक्रमानुसार निम्नलिखित कालजयी ग्रन्थों की रचनाएँ कीं -

रामललानहछू, वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, जानकी-मंगल, रामचरितमानस, सतसई, पार्वती-मंगल, गीतावली, विनय-पत्रिका, कृष्ण-गीतावली, बरवै रामायण, दोहावली और कवितावली।

इनमें से रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली जैसी कृतियों के विषय में किसी कवि की यह आर्षवाणी सटीक प्रतीत होती है - पश्य देवस्य काव्यं, न मृणोति न जीर्यति। अर्थात् देवपुरुषों का काव्य देखिये जो न मरता न पुराना होता है।

लगभग चार सौ वर्ष पूर्व तुलसीदास जी ने अपनी कृतियों की रचना की थी। आधुनिक प्रकाशन-सुविधाओं से रहित उस काल में भी तुलसीदास का काव्य जन-जन तक पहुँच चुका था। यह उनके कवि रूप में लोकप्रिय होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मानस जैसे वृहद् ग्रन्थ को कण्ठस्थ करके सामान्य पढ़े लिखे लोग भी अपनी शुचिता एवं ज्ञान के लिए प्रसिद्ध होने लगे थे।

रामचरितमानस तुलसीदास जी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, इसलिए प्रामाणिक रचनाओं के सम्बन्ध में अन्तःसाक्ष्य का अभाव दिखायी देता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

रामचरितमानस,
रामललानहछू,
वैराग्य-संदीपनी,

बरवै रामायण,
पार्वती-मंगल,
जानकी-मंगल,
रामाज्ञाप्रश्न,
दोहावली,
कवितावली,
गीतावली,
श्रीकृष्ण-गीतावली,
विनय-पत्रिका,
सतसई,
छंदावली रामायण,
कुंडलिया रामायण,
राम शलाका,
संकट मोचन,
करखा रामायण,
रोला रामायण,
झूलना,
छप्पय रामायण,
कवित्त रामायण,
कलिधर्माधर्म निरूपण।

हनुमान चालीसा

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स' में **ग्रियर्सन** ने भी उपरोक्त प्रथम बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

कुछ ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण–

रामललानहछू

यह संस्कार गीत है। इस गीत में कतिपय उल्लेख राम-विवाह की कथा से भिन्न हैं।

गोद लिहैं कौशल्या बैठि रामहिं वर हो।

सोभित दूलह राम सीस, पर आंचर हो।।

वैराग्य संदीपनी

वैराग्य संदीपनी को माताप्रसाद गुप्त ने अप्रामाणिक माना है, पर **आचार्य चंद्रवली पांडे** इसे प्रामाणिक और तुलसी की आरंभिक रचना मानते हैं। कुछ और प्राचीन प्रतियों के उपलब्ध होने से ठोस प्रमाण मिल सकते हैं। संत महिमा वर्णन का पहला सोरठा पेश है –

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत।
जिन्हके विमल विवेक, सेष महेस न कहि सकत।।
–बरवै रामायण

विद्वानों ने इसे तुलसी की रचना घोषित किया है। शैली की दृष्टि से यह तुलसीदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी खंडित प्रति ही ग्रंथावली में संपादित है।

पार्वती-मंगल

यह तुलसी की प्रामाणिक रचना प्रतीत होती है। इसकी काव्यात्मक प्रौढ़ता तुलसी सिद्धांत के अनुकूल है। कविता सरल, सुबोध रोचक और सरस है। "जगत मातु पितु संभु भवानी" की श्रृंगारिक चेष्टाओं का तनिक भी पुट नहीं है। लोक रीति इतनी यथास्थिति से चित्रित हुई है कि यह संस्कृत के शिव काव्य से कम प्रभावित है और तुलसी की मति की भक्तयात्मक भूमिका पर विरचित कथा काव्य है। व्यवहारों की सुष्ठुता, प्रेम की अनन्यता और वैवाहिक कार्यक्रम की सरसता को बड़ी सावधानी से कवि ने अंकित किया है। तुलसीदास अपनी इस रचना से अत्यन्त संतुष्ट थे, इसीलिए इस अनासक्त भक्त ने केवल एक बार अपनी मति की सराहना की है –

प्रेम पाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि।।

जानकी-मंगल

विद्वानों ने इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान दिया है। पर इसमें भी क्षेपक है–

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।

डाँटहि आँखि देखाइ कोप दारुन किए।।
राम कीन्ह परितोष रोस रिस परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि।।
रघुबर भुजबल देख उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भाँतिन्ह।।

तुलसी के मानस के पूर्व वाल्मीकीय रामायण की कथा ही लोक प्रचलित थी। काशी के पंडितों से मानस को लेकर तुलसीदास का मतभेद और मानस की प्रति पर विश्वनाथ का हस्ताक्षर संबंधी जनश्रुति प्रसिद्ध है।

रामाज्ञा प्रश्न

यह ज्योतिष शास्त्रीय पद्धति का ग्रंथ है। दोहों, सप्तकों और सर्गों में विभक्त यह ग्रंथ रामकथा के विविध मंगल एवं अमंगलमय प्रसंगों की मिश्रित रचना है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्त्व नगण्य है। सभी इसे तुलसीकृत मानते हैं। इसमें कथा-शृंखला का अभाव है और वाल्मीकीय रामायण के प्रसंगों का अनुवाद अनेक दोहों में है।

दोहावली

दोहावली में अधिकांश दोहे मानस के हैं। कवि ने चातक के व्याज से दोहों की एक लंबी शृंखला लिखकर भक्ति और प्रेम की व्याख्या की है। दोहावली दोहा संकलन है। मानस के भी कुछ कथा निरपेक्ष दोहों को इसमें स्थान है। संभव है कुछ दोहे इसमें भी प्रक्षिप्त हों, पर रचना की अप्रामाणिकता असंदिग्ध है।

कवितावली

कवितावली तुलसीदास की रचना है, पर सभा संस्करण अथवा अन्य संस्करणों में प्रकाशित यह रचना पूरी नहीं प्रतीत होती है। कवितावली एक प्रबंध रचना है। कथानक में अप्रासंगिकता एवं शिथिलता तुलसी की कला का कलंक कहा जायेगा।

गीतावली

गीतावली में गीतों का आधार विविध कांड का रामचरित ही रहा है। यह ग्रंथ रामचरितमानस की तरह व्यापक जनसम्पर्क में कम गया प्रतीत होता है।

इसलिए इन गीतों में परिवर्तन-परिवर्द्धन दृष्टिगत नहीं होता है। गीतावली में गीतों के कथा - संदर्भ तुलसी की मति के अनुरूप हैं। इस दृष्टि से गीतावली का एक गीत लिया जा सकता है -

कैकेयी जौ लौं जियत रही।
तौ लौं बात मातु सों मुह भरि भरत न भूलि कही।।
मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गँसन गही।
सीय लखन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही।।
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही।।

इसमें भरत और राम के शील का उत्कर्ष तुलसीदास ने व्यक्त किया है। गीतावली के उत्तरकांड में मानस की कथा से अधिक विस्तार है। इसमें सीता का वाल्मीकि आश्रम में भेजा जाना वर्णित है। इस परित्याग का औचित्य निर्देश इन पंक्तियों में मिलता है -

भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहीं और अनघ उपाउ।।
पालिबे असिधार-ब्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भांति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ।।

श्रीकृष्ण गीतावली

श्रीकृष्ण गीतावली भी गोस्वामीजी की रचना है। श्रीकृष्ण-कथा के कतिपय प्रकरण गीतों के विषय हैं।

हनुमानबाहुक

यह गोस्वामी जी की हनुमत-भक्ति संबंधी रचना है। पर यह एक स्वतंत्र रचना है। इसके सभी अंश प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

तुलसीदास को राम प्यारे थे, राम की कथा प्यारी थी, राम का रूप प्यारा था और राम का स्वरूप प्यारा था। उनकी बुद्धि, राग, कल्पना और भावुकता पर राम की मर्यादा और लीला का आधिपत्य था। उनक आंखों में राम की छवि बसती थी। सब कुछ राम की पावन लीला में व्यक्त हुआ है, जो रामकाव्य की परम्परा की उच्चतम उपलब्धि है। निर्दिष्ट ग्रंथों में इसका एक रस प्रतिबिंब है।

श्रीरामचरितमानस

श्री रामचरितमानस अवधी भाषा में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 16वीं सदी में रचित एक इतिहास की घटना है। इस ग्रन्थ को अवधी साहित्य (हिंदी साहित्य) की एक महान कृति माना जाता है। इसे सामान्यत: 'तुलसी रामायण' या 'तुलसीकृत रामायण' भी कहा जाता है। रामचरितमानस भारतीय संस्कृति में एक विशेष स्थान रखता है। रामचरितमानस की लोकप्रियता अद्वितीय है। उत्तर भारत में 'रामायण' के रूप में बहुत से लोगों द्वारा प्रतिदिन पढ़ा जाता है। शरद नवरात्रि में इसके सुन्दर काण्ड का पाठ पूरे नौ दिन किया जाता है। रामायण मण्डलों द्वारा मंगलवार और शनिवार को इसके सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है।

श्री रामचरित मानस के नायक श्रीराम हैं जिनको एक मर्यादा पुरोषोत्तम के रूप में दर्शाया गया है, जोकि अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीहरि नारायण भगवान के अवतार है जबकि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण में श्री राम को एक आदर्श चरित्र मानव के रूप में दिखाया गया है। जो सम्पूर्ण मानव समाज ये सिखाता है जीवन को किस प्रकार जिया जाय भले ही उसमे कितने भी विन हों तुलसी के प्रभु राम सर्वशक्तिमान होते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। गोस्वामी जी ने रामचरित का अनुपम शैली में दोहों, चौपाइयों, सोरठों तथा छंद का आश्रय लेकर वर्णन किया है।

परिचय

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने श्री रामचन्द्र के निर्मल एवं विशद चरित्र का वर्णन किया है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत रामायण को रामचरितमानस का आधार माना जाता है। यद्यपि रामायण और रामचरितमानस दोनों में ही राम के चरित्र का वर्णन है परंतु दोनों ही महाकाव्यों के रचने वाले कवियों की वर्णन शैली में उल्लेखनीय अन्तर है। जहाँ वाल्मीकि ने रामायण में राम को केवल एक सांसारिक व्यक्ति के रूप में दर्शाया है वहीं तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम को भगवान विष्णु का अवतार माना है।

रामचरितमानस को तुलसीदास ने सात काण्डों में विभक्त किया है। इन सात काण्डों के नाम हैं–बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड (युद्धकाण्ड) और उत्तरकाण्ड। छन्दों की संख्या के

अनुसार बालकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड क्रमशः सबसे बड़े और छोटे काण्ड हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में अवधी के अलंकारों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है विशेषकर अनुप्रास अलंकार का। रामचरितमानस में प्रत्येक हिंदू की अनन्य आस्था है और इसे हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है।

संक्षिप्त मानस कथा

यह बात उस समय की है जब मनु और सतरूपा परमब्रह्म की तपस्या कर रहे थे। कई वर्ष तपस्या करने के बाद शंकरजी ने स्वयं पार्वती से कहा कि ब्रह्मा, विष्णु और मैं कई बार मनु सतरूपा के पास वर देने के लिये आये ('बिधि हरि हर तप देखि अपारा, मनु समीप आये बहु बारा') और कहा कि जो वर तुम माँगना चाहते हो माँग लोय पर मनु सतरूपा को तो पुत्र रूप में स्वयं परमब्रह्म को ही माँगना था, फिर ये कैसे उनसे यानी शंकर, ब्रह्मा और विष्णु से वर माँगते? हमारे प्रभु श्रीराम तो सर्वज्ञ हैं। वे भक्त के हृदय की अभिलाषा को स्वतः ही जान लेते हैं। जब 23 हजार वर्ष और बीत गये तो प्रभु श्रीराम के द्वारा आकाशवाणी होती है–

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी, गति अनन्य तापस नृप रानी।
माँगु माँगु बरु भइ नभ बानी, परम गँभीर कृपामृत सानी।।

इस आकाशवाणी को जब मनु सतरूपा सुनते हैं तो उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है और जब स्वयं परमब्रह्म राम प्रकट होते हैं तो उनकी स्तुति करते हुए मनु और सतःपा कहते हैं– 'सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू, बिधि हरि हर बंदित पद रेनू। सेवत सुलभ सकल सुखदायक, प्रणतपाल सचराचर नायक' अर्थात् जिनके चरणों की वन्दना विधि, हरि और हर यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही करते हैं, तथा जिनके स्वरूप की प्रशंसा सगुण और निर्गुण दोनों करते हैं– उनसे वे क्या वर माँगें? इस बात का उल्लेख करके तुलसीदास ने उन लोगों को भी राम की ही आराधना करने की सलाह दी है, जो केवल निराकार को ही परमब्रह्म मानते हैं।

भाषा-शैली

रामचरितमानस की भाषा के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। कोई इसे अवधी मानता है तो कोई भोजपुरी। कुछ लोक मानस की भाषा अवधी और

भोजपुरी की मिलीजुली भाषा मानते हैं। मानस की भाषा बुंदेली मानने वालों की संख्या भी कम नहीं है।

गोस्वामी जी ने भाषा को नया स्वरूप दिया। यह अवधी नहीं अपितु वही भाषा थी जो प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश होते हुए, 15 दशकों तक समस्त भारत की साहित्यिक भाषा रही ब्रजभाषा के नए रूप मागधी, अर्धमागधी आदि से सम्मिश्र होकर आधुनिक हिन्दी की ओर बढ़ रही थी, जिसे 'भाखा' कहा गया एवं जो आधुनिक हिन्दी 'खड़ीबोली' का पूर्व रूप थी।

तुलसीदास 'ग्राम्य गिरा' के पक्षधर थे परन्तु वे जायसी की गँवारू भाषा अवधी के पक्षधर नहीं थे। तुलसीदास की तुलना में जायसी की अवधी अधिक शुद्ध है। स्वयं गोस्वामी जी के अन्य अनेक ग्रन्थ जैसे 'पार्वतीमंगल' तथा 'जानकीमंगल' अच्छी अवधी में है। गोस्वामी जी संस्कृत के भी विद्वान् थे, इसलिए संस्कृत व आधुनिक शुद्ध हिन्दी खड़ीबोली का प्रयोग भी स्वाभाविक रूप में हुआ है।

चित्रकूट स्थित अन्तरराष्ट्रीय मानस अनुसंधान केन्द्र के प्रमुख **स्वामी रामभद्राचार्य** ने रामचरितमानस का सम्पादन किया है। स्वामी जी ने लिखा है कि रामचरितमानस के वर्तमान संस्करणों में कर्तृवाचक उकार शब्दों की बहुलता हैं। उन्होंने इसे अवधी भाषा की प्रकृति के विरुद्ध बताया है। इसी प्रकार उन्होंने उकार को कर्मवाचक शब्द का चिन्ह मानना भी अवधी भाषा के विपरीत बताया है। स्वामीजी अनुनासिकों को विभक्ति को द्योतक मानने को भी असंगत बताते हैं- 'जब तें राम ब्याहि घर आये'। कुछ अपवादों को छोड़कर अनावश्यक उकारान्त कर्तृवाचक शब्दों के प्रयोग को स्वामी रामभद्राचार्य ने अवधी भाषा के विरुद्ध बताया है। स्वामी रामभद्रचार्य ने 'न्ह' के प्रयोग को भी अनुचित और अनावश्यक बताया है। उनके अनुसार नकार के साथ हकार जोड़ना ब्रजभाषा का प्रयोग है अवधी का नहीं। स्वामीजी के अनुसार मानस की उपलब्ध प्रतियों में तुम के स्थान पर 'तुम्ह' और 'तुम्हहि' शब्दों के जो प्रयोग मिलते हैं वे अवधी में नहीं होते। इसी प्रकार 'श' न तो प्राचीन अवधी की ध्वनि है और न ही आधुनिक अवधी की।

4

अमीर खुसरो की प्रमुख पुस्तकें

अबुल हसन यमीनुद्दीन अमीर खुसरो (1253–1325) चौदहवीं सदी के लगभग दिल्ली के निकट रहने वाले एक प्रमुख कवि, शायर, गायक और संगीतकार थे। उनका परिवार कई पीढ़ियों से राजदरबार से सम्बंधित था। स्वयं अमीर खुसरो ने 8 सुल्तानों का शासन देखा था। अमीर खुसरो प्रथम मुस्लिम कवि थे, जिन्होंने हिंदी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिंदी, हिन्दवी और फारसी में एक साथ लिखा, उन्हें खड़ी बोली के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। वे अपनी पहेलियों और मुकरियों के लिए जाने जाते हैं। सबसे पहले उन्हीं ने अपनी भाषा के लिए हिन्दवी का उल्लेख किया था। वे फारसी के कवि भी थे। उनको दिल्ली सल्तनत का आश्रय मिला हुआ था। उनके ग्रंथों की सूची लम्बी है। साथ ही इनका इतिहास स्रोत रूप में महत्त्व है। अमीर खुसरो को 'हिन्द का तोता' कहा जाता है

मध्य एशिया की लाचन जाति के तुर्क सैफुद्दीन के पुत्र अमीर खुसरो का जन्म सन् 1253 ईस्वी (652 हि.) में एटा उत्तर प्रदेश के पटियाली नामक कस्बे में हुआ था। लाचन जाति के तुर्क चंगेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर बलबन (1266–1286 ई.) के राज्यकाल में शरणार्थी के रूप में भारत में आ

बसे थे। खुसरो की माँ बलबन के युद्धमंत्री इमादुतुल मुल्क की पुत्री तथा एक भारतीय मुसलमान महिला थी। सात वर्ष की अवस्था में खुसरो के पिता का देहान्त हो गया। किशोरावस्था में उन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ किया और 20 वर्ष के होते होते वे कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गए। खुसरो में व्यावहारिक बुद्धि की कोई कमी नहीं थी। सामाजिक जीवन की खुसरो ने कभी अवहेलना नहीं की। खुसरो ने अपना सारा जीवन राज्याश्रय में ही बिताया। राजदरबार में रहते हुए भी खुसरो हमेशा कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे। साहित्य के अतिरिक्त संगीत के क्षेत्र में भी खुसरो का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने भारतीय और ईरानी रागों का सुन्दर मिश्रण किया और एक नवीन राग शैली इमान, जिल्फ, साजगरी आदि को जन्म दिया। भारतीय गायन में कव्वालीऔर सितार को इन्हीं की देन माना जाता है। इन्होंने गीत के तर्ज पर फारसी में और अरबी गजल के शब्दों को मिलाकर कई पहेलियाँ और दोहे भी लिखे हैं।

जीवन

इनके तीन पुत्रों में अबुलहसन (अमीर खुसरो) सबसे बड़े थे - 4 बरस की उम्र में वे दिल्ली लाए गए। 8 बरस की उम्र में वे प्रसिद्ध सूफी हजरत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य बने। 16-17 साल की उम्र में वे अमीरों के घर शायरी पढ़ने लगे थे। एक बार दिल्ली के एक मुशायरे में बलबन के भतीजे सुल्तान मुहम्मद को खुसरो की शायरी बहुत पसंद आई और वो इन्हें अपने साथ मुल्तान (आधुनिक पाकिस्तानी पंजाब) ले गया। सुल्तान मुहम्मद खुद भी एक अच्छा शायर था - उसने खुसरो को एक अच्छा ओहदा दिया। मसनवी लिखवाई जिसमें 20 हजार शेर थे - ध्यान रहे कि इसी समय मध्यतुर्की में शायद दुनिया के आजतक के सबसे श्रेष्ठ शायर **मौलाना रूमी** भी एक मसनवी लिख रहे थे या लिख चुके थे। 5 साल तक मुल्तान में उनका जिंदगी बहुत ऐशो आराम से गुजरी। इसी समय मंगोलों का एक खेमा पंजाब पर आक्रमण कर रहा था। इनको कैद कर हेरात ले जाया गया - मंगोलों ने सुल्तान मुहम्मद का सर कलम कर दिया था। दो साल के बाद इनकी सैनिक आकांक्षा की कमी को देखकर और शायरी का अंदाज देखकर छोड़ दिया गया। फिर ये पटियाली पहुँचे और फिर दिल्ली आए। बलबन को सारा कस्सिा सुनाया - बलबन भी बीमार पड़ गया और फिर मर गया। फिर कैकुबाद के दरबार में भी ये रहे - वो भी इनकी शायरी

से बहुत प्रसन्न रहा और इन्हें मुलुकशुअरा (राष्ट्रकवि) घोषित किया। जलालुद्दीन खिलजी इसी वक्त दिल्ली पर आक्रमण कर सत्ता पर काबिज हुआ। उसने भी इनको स्थाई स्थान दिया। जब खिलजी के भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने 70 वर्षीय जलालुद्दीन का कत्ल कर सत्ता हथियाई तो भी वो अमीर खुसरो को दरबार में रखा। चित्तौड़ पर चढ़ाई के समय भी अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खिलजी को मना किया लेकिन वो नहीं माना। इसके बाद मलिक काफूर ने अलाउद्दीन खिलजी से सत्ता हथियाई और मुबारक शाह ने मलिक काफूर से।

खुसरो की प्रसिद्ध रचनाएं हैं–

1.खलिकबारी(कोशग्रंथ),

2.हालात –ए– कन्हैया, (भक्ति परक रचना),

3.नजराना–ए–हिंदी।

उदाहरण

दोहा

गोरी सोये सेज पर, मुख पर डाले केश,
चल खुसः घर अपने, रैन भई चहूँ देश,
खुसरो दरिया प्रेम का, सो उलटी वा की धार,
जो उबरो सो डूब गया, जो डूबा हुवा पार।
सेज वो सूनी देख के, रोवुँ मैं दिन रैन,
पिया पिया मैं करत हूँ पहरों, पल भर सुख ना चौन।
रैनी चढ़ी रसूल की, सो रंग मौला के हाथ,
जिसके कपरे रंग दिए, सो धन धन वाके भाग।
खुसरो बाजी प्रेम की, मैं खेलूँ पी के संग,
जीत गयी तो पिया मोरे, हारी पी के संग।
चकवा चकवी दो जने, इन मत मारो कोय,
ये मारे करतार के रैन बिछोया होय।
खुसरो ऐसी पीत कर, जैसे हिन्दू जोय,
पूत पराए कारने, जल जल कोयला होय।
खुसरवा दर इश्क बाजी कम जि हिन्दू जन माबाश,

कज बराए मुर्दा मा सोजद जान-ए-खेस रा।
उज्ज्वल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान,
देखत में तो साधु है, पर निपट पाप की खान।
श्याम सेत गोरी लिए, जनमत भई अनीत,
एक पल में फिर जात है, जोगी काके मीत।
पंखा होकर मैं डुली साती तेरा चाव,
मुझ जलती का जनम गयो, तेरे लेखन भाव।
नदी किनारे मैं खड़ी, सो पानी झिलमिल होय,
पी गोरी मैं साँवरी, अब किस विध मिलना होय।
साजन ये मत जानियो, तोहे बिछड़त मोहे को चौन,
दिया जलत है रात में, और जिया जलत बिन रैन।
रैन बिना जग दुखी, और दुखी चन्द्र बिन रैन,
तुम बिन साजन मैं दुखी, और दुखी दरस बिन नैंन।
अंगना तो परबत भयो, देहरी भई विदेस,
जा बाबुल घर आपने, मैं चली पिया के देस।
आ साजन मोरे नयनन में, सो पलक ढाप तोहे दूँ,
न मैं देखूँ और न कोय, न तोहे देखन दूँ।
अपनी छवि बनाई के, मैं तो पी के पास गई,
जब छवि देखी पीहू की, सो अपनी भूल गई।
खुसरो पाती प्रेम की, बिरला बाँचे कोय,
वेद, कुरान, पोथी पढ़े, प्रेम बिना का होय।
संतों की निंदा करे, रखे पर नारी से हेत,
वे नर ऐसे जाएंगे, जैसे रणरेही का खेत।
खुसरो सरीर सराय है, क्यों सोवे सुख चैन,
कूच नगारा सांस का, बाजत है दिन रैन।

पद

गजल

जिहाल-ए मिस्कीं मकुन तगाफुल,दुराये नैना बनाये बतियां।
कि ताब-ए-हिजरां नदारम, जान, न लेहो काहे लगाये छतियां।।

शबां-ए-हिजरां दरज चूं जुल्फ वा रोज-ए-वस्लत चो उम्र कोताह,
सखि पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।।
यकायक अज दिल, दो चश्म-ए-जादू ब सद फरेबम बाबुर्द तस्कीं,
किसे पडी है, जो जा सुनावे, पियारे पी को हमारी बतियां।।
चो शम्मा सोजान, चो जर्रा हैरान हमेशा गिरयान, बे इश्क आं मेह।
न नींद नैना, ना अंग चौना, ना आप आवें, न भेजें पतियां।।
बहक्क-ए-रोजे, विसाल ए-दिलबर कि दाद मारा, गरीब खुसरौ।
सपेट मन के, वराये राखूं जो जाये पांव, पिया के खटियां।।
खबरम रसीदा इमशब, के निगार खघही आमद
सर-ए-मन फिदा-ए-राही के सवार खाही आमद।
हमा आहवान-ए-सेहरा, र-ए-खुद निहादा बर कफ
बा उम्मीद आं के रोजी, बा शिकार खाही आमद।
कशिशी के इश्क दारद, नागुजारदात बादीनशां
बा जनाजा गर न आई, बमजार खाही आमद।

मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो तो हिन्दवी में पूछो। मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूँगा - अमीर खुसरो

कहमुकरी

खा गया पी गया, दे गया बुत्ता
क्या सखि साजन?, ना सखि कुत्ता !

अमीर खुसरो द्वारा लिखित फारसी ग्रंथ

तुहका-तुस-सिग्र (बचपन का तोहफा) पहला दीवान 671 हिज्री सन 1271 ई., उम्र 16-19 वर्ष तथा 32-34 वर्ष।

वसतुल हयात : (जीवन का मध्य भाग) दूसरा दीवान, 684 हिज्री कविताऐं। उम्र 19-24 वर्ष तथा 32-34 वर्ष।

गुर्र-तुल-कमाल (शुक्ल पक्ष की पहली रात) 693 हिज्री उम्र 34-43 वर्ष तीसरा व सबसे बड़ा एवं सर्वश्रेष्ठ दीवान। इसमें 9 मसनवियाँ हैं।

बकिया नकिया (बाकी साफ) चौथा दीवना उम्र 44-64 वर्ष। 716 हिज्री।

निहातयुल कमाल (कमाल की सीमा) पाँचवाँ और अंतिम दीवान।

मसनवियाँ

1. **किरान-उस-सादैन** (दो शुभ सितारों का मिलन) बादशाह बुगरा खाँ और उसके पुत्र कैकुबाद के झगड़े और फिर समझौते पर। 688 हिज्री। इसे मसनवी दर सिफत-ऐ-देहली भी कहते हैं।
2. **मिफ्ताहुल-फुतूह** (विजयों की कुंजी) 690 हिज्री। जलालुद्दीन फिरोज खिलजी की चार विजयों का वर्णन। मलिक छज्जू की बगावत।
3. **दवल रानी खिज्र खाँ या इश्किया या खिज्रनामः** (715 हिज्री) गुजराती के राजा कर्ण की बेटी देवल रानी और अलाउद्दीन खिलजी के बड़े पुत्र शहजादे खिज्र खाँ के प्रेम की कथा। इसमें भारतीय नारी का बेहद सुन्दर चित्रण खुसरो ने प्रस्तुत किया है।
4. **नुह सिपहर (नौ आसमान) 718 हिज्री**

अलाउद्दीन के बेटे कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के कहने से खुसरो ने इस लिखा। बादशाह ने इसके लिए एक हाथी के बराबर सोना तौल कर खुसरो को दिया। हिन्दुस्तान के रीति रिवाजों, संस्कृति, प्रकृति। पशु-पक्षियों वा लोगों की तारीफ।

5. **तुगलक नामा**

अपनी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व लिखी। ऐतिहासिक मसनवी।

6. **खम्सा-ए-खुसरो** (पाँच छोटी मसनवियाँ)

क. हश्त-बहिश्त,
ख. मतला उल अनवार,
ग. शीरी व खुसरो,
घ. मजनू व लैला,
ङ. आइने-सिकन्दरी।

कवि निजामी के कुसरो के जवाब में 698-701 हिज्री के बीच खुसरो ने लिखी।

7. **मसनवी शिकायत नामा मोमिन परु पटियाली।**

अपने जन्म स्थान की खस्ता हालत पर गहरा दुख खुसरो ने व्यक्त किया। यह बाद में मिली है।

गद्य रचनाएं

1. **एजाजे खुसरवी** (खुसरो के कारनामे), उम्र 70 वर्ष, 719 हिज्री, भाषा शास्त।
2. **खजाइन-उल-फुतूह या तारीखे-अलाई** (फतहों का खजाना) 695 हिज्री से 711 हिज्री तक। अलाउद्दीन के शासन प्रबंध का विवरण।
3. **अफजलुल फवायद** (सबसे अच्छा फायदा) गुरु हजरत निजामुद्दीन की शिक्षाएं।
4. **किस्सा चार दरवेश** (कहानी संग्रह) - किस्सों की यह पुस्तक खुसरो ने अपने गुरु निजामुद्दीन औलिया को सुनाने के लिए लिखी।
5. **राहतुल मुहिब्बीन** - ह निजामुद्दीन औलिया के उपदेशों का संग्रह।
6. **इनशाए खुसरो** - यह पत्रों का संकलन है।
7. **मकालः तारीखुल खुलफा** - टामस विलियम ने ओरियंटल बाइग्रैफिकल शब्दकोष में खुसरो के प्रसंग में इसका उल्लेख किया है। 354 ई.। इसमें खलीफा, सूफियों, दरवेशों व वलियों आदि धार्मिक व्यक्तियों के वृत्तान्त है।

हिन्दी रचनाएं (खुसरो द्वारा लिखित) -

1. खालिक बारी (हिन्दवी-फारसी शब्द कोष, कविता के रूप में)

2. दीवाने हिन्दवी - आम आदमी के लिए। पहेलियाँ, सावन, बरखा, शादी आदि गीत।

3. हालात-ए-कन्हैया- अपने गुरु निजामुद्दीन द्वारा स्वप्न में भगवान श्री कृष्ण के दर्शन देने के उपरान्त इनके आदेश पर खुसरो ने श्री कृष्ण की स्तुति में इसे हिन्दवी भाषा में लिखा।

अमीर खुसरो से संबंधित अन्य लोगों द्वारा लिखित पुस्तकें (उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी) -

(1) फवायद उल फवायद - हसन आला सिज्जी (अमीर खुसरो के जिगरी दोस्त) ह. निजामुद्दीन औलिया की शिक्षाएं,

(2) तारीखे फिरोज भाही - जियाउद्दीन बर्नी,

(3) सिया-उल-औलिया - अमीर खुर्द किरमानी,

(4) तारीखे फरिश्ता - मौला कासिम फरिश्ता,

(5) मदन - उल - मूसिकी - मोहम्मद करम इमाम खान,

(6) आबे हयात - मोहम्मद हुसैन आजाद,

(7) निकातुश्ओरा – मीर तकी मीर,

(8) राग दपंण – फकीरुल्ला,

(9) बनी – वाजिद अली शाह,

(10) सौतुल मुबारक – वाजिद अली शाह,

(11) हयात-ऐ-खुसरो – सईद अहमद मरहरवी,

(12) हयाते खुसरो – मौलाना शिबली नोमानी,

(13) फिरहंग-ए-आसफिया – मौलवी सईद अहमद दहलवी,

(14) जवाहर-ए-खुसरवी (उर्दू) मोहम्मद अमीन अब्बासी चिरैयकोट,

(15) लाइफ ऑफ अमीर खुसरो – प्रो. मोहम्मद हबीब,

(16) सूफिया तुल औलिया – दारा शिकोह,

(17) तजक्रा-ए-उल्माए-हिन्द – रहमान अली,

(18) शेरुल आजम – मौ. शिब्ली नौमानी,

(19) उर्दू-ए-कदीम – शन्भुल्ला कादरी,

(20) खुसरो की हिन्दी कविता – बृज रत्न दास, नागिरी प्रचारिणी सभा काशी,

(21) लाइफ एण्ड वर्कस आफ अमीर खुसरो – मौ. वहीद मिर्जा,

(22) हयात-ए-अमीर खुसरो – नकी मोहम्मद खान खुरजवी,

(23) हिन्दुस्तान अमीर खुसरो की नजर में – सईद सबाहुद्दीन अब्दुर्रहमान,

(24) खुसरो का ज़हनी सफर – डॉ. ज्यो अंसारी,

(25) खुसरो शनाशी – डॉ. ज्यो अंसारी व अबुल फैज सहर,

(26) अमीर खुसरो – शेख सलीम अहमद,

(27) अमीर खुसरो – अर्श मल्सियानी,

(28) अमीर खुसरो दहलवी – मुमताज हुसैन, पाकिस्तान,

(29) मूसकी हजया अमीर खुसरो – डॉ. चाँद खाँ,

(30) अमीर खुसरो बहैसियत हिन्दी शायर – डॉ. सफदर आह,

(31) अमीर खुसरो एण्ड इंडियन रिडिल ट्रेडीशन – वी.पी. वटुक,

(32) अमीर खुसरो और उनकी हिन्दी शायरी – शुजात अली संदेहलवी,

(33) अमीर खुसरो का हिन्दवी कलाम – बर्लिन शप्रिंगर प्रति सहित। डॉ. गोपी चंद नारंग। सीमांत प्रकाशन,

(34) अमीर खुसरो संपादक राज नारायन राय,

(35) अमीर खुसरो – सईद गुलाम शमनानी,

(36) अमीर खुसरो मेमोरियल वाल्यूम – प्रकाशन विभाग,

(37) खुसरो की हिन्दी कविता – मिश्र बंधु,

(38) अमीर खुसरो और उनकी हिन्दवी रचनाऐं – डॉ. भोलानाथ तिवारी,

(39) खुसरो व शीरी – मसूद कुरेशी,

(40) अमीर खुसरो और हिन्दुस्तान डॉ. ताराचंद,

(41) खुसरो नामा – प्रो. मुजीब रिज्वी,

(42) तजकिरा – ए – दौलत शाह समरकंदी,

(43) अमीर खुसरो एस ए जीनियस सबाहुद्दीन अब्दुर्र रहमान, इदारा–ए–अदबियात–ए–देहली,

(44) गनयत उल मुनया – शाहब सरमदी,

(45) इंडियन म्यूजिक – ठाकुर जयदेव सिंह। संगीत नाटक रिसर्च एकेडमी,

(46) मौसिकी–ए–फरेबी, मरकज–ए–मुतालयात–ए–हमाहंमी–ए–रिसर्च एकेडमी,

(47) लुगात–नामा–ए–देहखुदा, अली अकबर देहखुदा संपादक डॉ. मुइन व अन्य, तेहरान, 1335, 1339 ई. वाल्यूम 34 व 39

(48) खुसरो दे चिरिसमेटिक, लाइफ, हिस्ट्री एण्ड वर्क्स ऑफ तूती–ए–हिन्द, रियाज जाफर, 2003, एजुकेशनल पब्लिकिंशग हाउस, दिल्ली,

(49) अमीर खुसरो, सोहनपाल सुमनाक्षट, प्रकाशन विभाग,

(50) भारत की महान विभूति अमीर खुसरो, डॉ. परमानंद पांचाल हिन्दी बुक सेंटर,

(51) हिन्दुस्तानी जुबान, अमीर खुसरो नम्बर एडीटर डॉ. अब्दुस्सत्तार दलवी, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा महात्मा गाँधी मेमोरियल रिसर्च सेंटर बम्बई,

(52) राष्ट्रीय एकता के अग्रदूत अमीर खुसरो डॉ. मलिक मोहम्मद पीताम्बर पब्लिशिग कंपनी दिल्ली,

(53) अमीर खुसरो संपादक सुरेन्द्र तिवारी, नवाँ संस्करण, उत्तर प्रदेश सरकार, सूचना विभाग लखनऊ,

(54) खालिक बारी सूरजमल कमरुद्दीन खाँ पटना, 1870 ई.,

(55) हिन्दी साहित्य सारिणी, हिन्दी में सन 1964 के अंत तक प्रकाशित सभी ग्रंथों का वैज्ञानिक प्रक्रिया अनुसार वर्गीकृत एवं क्रम बद्ध विवरण, भाग–1

पीताम्बर नारायण एवं भास्करन नारायण, विश्वेश्वरानंद संस्थान, होशियार पुर, 2027 वि.,

(56) तजकिहद-ए-खुसरवी - हसन निजामी, दरगाह निजामुद्दीन (पोस्ट ऑफिस के पास)।

खालिकबारी

खालिकबारी अमीर खुसरो द्वारा रचित अरबी-फारसी और हिन्दी का पद्यमय पर्यायवाची शब्दकोश है। भारत के अतिरिक्त ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगलादेश इत्यादि देशों में अमीर खुसरो की रचनाओं को बड़े उत्साह से पढ़ा जाता है। उन्हें 'तूतिया-ए-हिन्द' कहा जाता है।

उद्देश्य

इस शब्दकोश की रचना अमीर खुसरो ने उस काल की ऐतिहासिक आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए की थी। तत्कालीन समय में राजभाषा फारसी थी। आम जनता को इस भाषा का ज्ञान होना आवश्यक था एवं भारत में आने वाले शरणार्थियों को यहाँ की आम बोलचाल की भाषा का भी ज्ञान होना आवश्यक था। इन दोनों की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए अमीर खुसरो ने अरबी-फारसी तथा हिन्दी के छन्दबद्ध पर्यायवाची शब्दकोश की रचना की, जो मदरसों में बच्चों को पढ़ाई जाने लगी। इस प्रकार 1061 हिजरी में भी 'खालिकबारी' अमीर खुसरो के नाम से ही प्रचलित थी। इसलिए तजल्ली अमीर खुसरो तथा उनके गुरु हजरत निजामुद्दीन औलिया की आत्मा से सहायता माँगते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अमीर खुसरो की रचनाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

खालिकबारी परंपरा

'खालिकबारी' परंपरा में इस प्रकार के कई ग्रंथ लिखे गए, जिनमें सबसे प्रसिद्ध रचना अमीर खुसरो की कही जाती है, यद्यपि इस संबंध में पर्याप्त विवाद हैं। अनेक विद्वानों के अनुसार 'खालिकबारी' किसी 'खुसरोशाह' की रचना है, जो प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो के बहुत बाद में हुए थे। शिवाजी ने भी राजनीति की फारसी-संस्कृत शब्दावली बनाई थी, जिसमें लगभग 1500 शब्द थे। उसके

बाद खालिकबारी परंपरा में हिन्दी-फारसी के कई कोश लिखे गए। किंतु वैज्ञानिक ढंग से यह कार्य अंग्रेजों के संपर्क के बाद प्रारंभ हुआ।

अमीर खुसरो की अन्य रचनाएँ

ऐ री सखी मोरे पिया घर आए,
परदेसी बालम धन अकेली मेरा बिदेसी घर आवना,
मेरे महबूब के घर रंग है री,
छाप तिलक सब छीन्हीं रे,
बहुत कठिन है डगर पनघट की,
आ घिर आई दई मारी घटा कारी।,
जिहाल-ए मिस्कीं मकुन तगाफुल,
दैया री मोहे भिजोया री शाह निजम के रंग में।,
सकल बन फूल रही सरसों,
तोरी सूरत के बलिहारी, निजाम,
अम्मा मेरे बाबा को भेजो री,
बहोत रही बाबुल घर दुल्हन,
दुसुखने,
जब यार देखा नैन भर,
मोरा जोबना नवेलरा भयो है गुलाल,
ढकोसले या अनमेलियाँ,
जो पिया आवन कह गए अजहुँ न आए,
बहुत दिन बीते पिया को देखे,
काहे को ब्याहे बिदेस,
हजरत ख्वाजा संग खेलिए धमाल,
जो मैं जानती बिसरत हैं सैय्या,
सूफी दोहे,
दोहे।

5

विद्यापति की प्रमुख पुस्तकें

मैथिल कवि कोकिल, रसासिद्ध कवि विद्यापति, तुलसी, सूर, कबूर, मीरा सभी से पहले के कवि हैं। अमीर खुसरो यद्यपि इनसे पहले हुए थे। इनका संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश एवं मातृ भाषा मैथिली पर समान अधिकार था। विद्यापति की रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ट, एवं मैथिली तीनों में मिलती हैं।

देसिल वयना अर्थात् मैथिली में लिखे चंद पदावली कवि को अमरच्च प्रदान करने के लिए काफी है। मैथिली साहित्य में मध्यकाल के तोरणद्वार पर जिसका नाम स्वर्णाक्षर में अंकित है, वे हैं चौदहवीं शताब्दी के संघर्षपूर्ण वातावरण में उत्पन्न अपने युग का प्रतिनिधि मैथिली साहित्य-सागर का वाल्मीकि-कवि कोकिल विद्यापति ठाकुर। बहुमुखी प्रतिमा-सम्पन्न इस महाकवि के व्यक्तित्त्व में एक साथ चिन्तक, शास्त्रकार तथा साहित्य रसिक का अद्‌भुत समन्वय था। संस्कृत में रचित इनकी पुरुष परीक्षा, भू-परिक्रमा, लिखनावली, शैवसर्वश्वसार, शैवसर्वश्वसार प्रमाणभूत पुराण-संग्रह, गंगावाक्यावली, विभागसार, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्तितरंगिणी, गयापतालक एवं वर्षकृत्य आदि ग्रन्थ जहाँ एक ओर इनके गहन पाण्डित्य के साथ इनके युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा स्वरूप का साक्षी है तो दूसरी तरफ कीर्तिलता, एवं कीर्तिपताका महाकवि के अवह भाषा पर सम्यक ज्ञान के सूचक होने के साथ-साथ ऐतिहासिक साहित्यिक एवं भाषा सम्बन्धी महत्त्व रखनेवाला आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का अनुपम ग्रन्थ है।

परन्तु विद्यापति के अक्षम कीर्ति का आधार, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, है, मैथिली पदावली जिसमें राधा एवं कृष्ण का प्रेम प्रसंग सर्वप्रथम उत्तरभारत में गेय पद के रूप में प्रकाशित है। इनकी पदावली मिथिला के कवियों का आदर्श तो है ही, नेपाल का शासक, सामंत, कवि एवं नाटककार भी आदर्श बन उनसे मैथिली में रचना करवाने लगे बाद में बंगाल, असम तथा उड़ीसा के वैष्णभक्तों में भी नवीन प्रेरणा एवं नव भावधारा अपने मन में संचालित कर विद्यापति के अंदाज में ही पदावलियों का रचना करते रहे और विद्यापति के पदावलियों को मौखिक परम्परा से एक से दूसरे लोगों में प्रवाहित करते रहे।

कवि कोकिल की कोमलकान्त पदावली वैयक्तिकता, भावात्मकता, संश्रिप्तता, भावाभिव्यक्तिगत स्वाभाविकता, संगीतात्मकता तथा भाषा की सुकुमारता एवं सरलता का अद्‌भुत निर्देशन प्रस्तुत करती है। वर्ण्य विषय के दृष्टि से इनकी पदावली अगर एक तरफ से इनको रससिद्ध, शिष्ट एवं मर्यादित श्रृंगारी कवि के रूप में प्रेमोपासक, सौन्दर्य पारसी तथा पाठक के हृदय को आनन्द विभोर कर देने वाला माधुर्य का स्रष्टा, सिद्धहस्त कलाकार सिद्ध करती है तो दूसरी ओर इन्हें भक्त कवि के रूप में शास्त्रीय मार्ग एवं लोकमार्ग दोनों में सामंजस्य उपस्थित करने वाला धर्म एवं इष्टदेव के प्रति कवि का समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय देने वाला एक विशिष्ट भक्त हृदय का चित्र उपस्थित करती है साथ ही साथ लोकाचार से सम्बद्ध व्यावहारिक पद प्रणेता के रूप में इनको मिथिला की सांस्कृतिक जीवन का कुशल अध्येता प्रमाणित करती है। इतना ही नहीं, यह पदावली इनके जीवन्त व्यक्तित्त्व का भोगा हुआ अनुभूति का साक्षी बन समाज की तात्कालीन कुरीति, आर्थिक वैषम्य, लौकिक अन्धविश्वास, भूत-प्रेत, जादू-टोना, आदि का उद्‌घाटक भी है। इसके अलावे इस पदावली की भाषा-सौष्ठव, सुललित पदविन्यास, हृदयग्राही रसात्मकता, प्रभावशाली अलंकार, योजना, सुकुमार भाव व्यंजना एवं सुमधुर संगीत आदि विशेषता इसको एक उत्तमोत्तम काव्यकृति के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। हालांकि यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि महाकवि विद्यापति अपनी अमर पदावली के रचना के लिए अपने पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों खासकर भारवि, कालिदास, जयदेव, हर्ष अमरुक, गोवर्द्धनाचार्य आदि से कम ऋणि नहीं हैं, क्योंकि जिस विषयों को महाकवि ने अपनी पदावली में प्रस्तुत किया वे विषय पूर्व से ही संस्कृत के कवियों की रचनाओं में प्रस्तुत हो चुका था। विद्यापति की मौलिकता इसमें

निहित है कि इन्होंने उन रचनाओं की विषय उपमा अलंकार परिवेश आदि का अन्धानुकरण न कर उसमें अपने दीर्ध जीवन का महत्त्वपूर्ण एवं मार्मिक नानाविध अनुभव एवं आस्था को अनुस्यूत कर अप्रतिम माधुर्य एवं असीम प्राणवत्ता से युक्त मातृभाषा में यो प्रस्तुत किया कि वह इनके हृदय से नरूसृक वल्कु लबजही मानव के हृदय में प्रवेश कर जाता है। यही कारण है कि महाकवि की काव्य प्रतिमा की गुंज मात्र मिथिलांचल तक नहीं अपितु समस्त पूर्वांचल में, पूर्वांचल में भी क्यों समस्त भारतवर्ष में, समस्त भारतवर्ष में ही क्यों अखिल विश्व में व्याप्त है। राजमहल से लेकर पर्णकुटी तक में गुंजायमान विद्यापति का कोमलकान्त पदावली वस्तुतः भारतीय साहित्य की अनुपम वैभव है।

विद्यापति के प्रसंग में स्वर्गीय **डॉ. शैलेन्द्र मोहन झा** की उक्ति वस्तुतः शतप्रतिशत यथार्थ है। वे लिखते हैं–

'नेपालक पार्वत्य नीड़ रटओ अथवा कामरुपक वनवीचिका, बंगालक शस्य श्यामला भूमि रहओ अथवा उतकलक नारिकेर निकुंज, विद्यापतिक स्वर सर्वत्र समान रूप सँ गुंजित होइत रहैत छनि। हिनक ई अमर पदावली जहिना ललनाक लज्जावृत कंठ सँ, तहिना संगीतज्ञक साधित स्वरसँ, राजनर्तकीक हाव-भाव विलासमय दृष्टि निक्षेपसँ, भक्त मंडलीक कीर्तन नर्तन सँ, वैष्णव-वैश्णवीक एकताराक झंकारसँ निःसृत होइत युग-युगसँ श्रोतागणकें रस तृप्त करैत रहल अछि एवं करत। मिथिला मैथिलक जातीय एवं सांस्कृतिक गरिमाक मान-बिन्दु एवं साहित्यिक जागरणक प्रतीक चिन्हक रूप में आराध्य एवं आराधित महाकवि विद्यापतिक रचना जरिना मध्यकालीन मैथिली साहित्यिक अनुपम निधि आछि तहिना मध्यकाल में रचित समस्त मैथिली साहित्य सेहो हिनके प्रभावक एकान्त प्रतिफल अछि।'

महाकवि विद्यापति का जन्म वर्तमान मधुबनी जनपद के बिसपू नामक गाँव में एक सभ्रान्त मैथिल ब्राह्मण गणपति ठाकुर (इनके पिता का नाम) के घर हुआ था। बाद में यसस्वी राजा शिवसिंह ने यह गाँव विद्यापति को दानस्वरूप दे दिया था। इस दानपत्र कि प्रतिलिपि आज भी विद्यापति के वंशजों के पास है, जो आजकल सौराठ नामक गाँव में रहते हैं। उपलब्ध दस्तावेजों एवं पंजी-प्रबन्ध की सूचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि अभिनव जयदेव विद्यापति का जन्म ऐसे यशस्वी मैथिल ब्राह्मण परिवार में हुआ था, जिस पर विद्या की देवी सरस्वती के साथ लक्ष्मी की भी असीम कृपा थी। इस

विख्यात वंश में (विषयवार विसपी) एक-से-एक विद्धान्, शास्त्रीज्ञ, धर्मशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ हुए। महाकवि के वृहप्रपितामह देवादिव्य कर्णाटवंशीय राजाओं के सन्धि, विग्रहिक थे तथा देवादिव्य के सात पुत्रों में से धीरेश्वर, गणेश्वर, वीरेश्वर आदि महराज हरिसिंहदेव की मन्त्रिपरिषद् में थे। इनके पितामह जयदत्त ठाकुर एवं पिता गणपति ठाकुर राजपण्डित थे। इस तरह पाण्डिल्य एवं शास्त्रज्ञान कवि विद्यापति को सहज उत्तराधिकार में मिला था। अनेक शास्त्रीय विषयों पर कालजयी रचना का निर्माण करके विद्यापति ने अपने पूर्वजों की परम्परा को ही आगे बढ़ाया।

ऐसे किसी भी लिखित प्रमाण का अभाव है जिससे यह पता लगाया जा सके कि महाकवि कोकिल विद्यापति ठाकुर का जन्म कब हुआ था। यद्यपि महाकवि के एक पद से स्पष्ट होता है कि लक्ष्मण-संवत् 293, शाके 1324 अर्थात् मन् 1402 ई. में देवसिंह की मृत्यु हुई और राजा शिवसिंह मिथिला नरेश बने। मिथिला में प्रचलित किंवदन्तियों के अनुसार उस समय राजा शिवसिंह की आयु 50 वर्ष की थी और कवि विद्यापति उनसे दो वर्ष बड़े, यानी 52 वर्ष के थे। इस प्रकार 1402-52m1350 ई. में विद्यापति की जन्मतिथि मानी जा सकती है। लक्ष्मण-संवत् की प्रवर्त्तन तिथि के सम्बन्ध में विवाद है। कुछ लोगों ने सन् 1109 ई. से, तो कुथ ने 1119 ई. से इसका प्रारंभ माना है। स्व. नगेन्द्रनाथ गुप्त ने लक्ष्मण-संवत् 293 को 1412 ई. मानकर विद्यापति की जन्मतिथि 1360 ई. में मानी है। **ग्रिपर्सन** और **महामहोपाध्याय उमेश मिश्र** की भी यही मान्यता है। परन्तु श्रीब्रजनन्दन सहाय 'ब्रजवल्लभ', श्रीराम वृक्ष बेनीपुरी, डॉ. सुभद्र झा आदि सन् 1350 ई. को उनका जन्मतिथि का वर्ष मानते हैं। डॉ. शिवप्रसाद के अनुसार 'विद्यापति का जन्म सन् 1374 ई. के आसपास संभव मालूम होता है।' अपने ग्रन्थ विद्यापति की भूमिका में एक ओर **डॉ. विमानविहारी मजूमदार** लिखते हैं कि 'यह निश्चिततापूर्वक नहीं जाना जाता है कि विद्यापति का जन्म कब हुआ था और वे कितने दिन जीते रहे' (पृ. 43) और दूसरी ओर अनुमान से सन् 1380 ई. के आस पास उनकी जन्मतिथि मानते हैं।

हालांकि जनश्रुति यह भी है कि विद्यापति राजा शिवसिंह से बहुत छोटे थे। एक किंवदन्ती के अनुसार बालक विद्यापति बचपन से तीव्र और कवि स्वभाव के थे। एक दिन जब ये आठ वर्ष के थे तब अपने पिता गणपति ठाकुर के साथ शिवसेंह के राजदरबार में पहुँचे। राजा शिवसिंह के कहने पर इन्होने निम्नलिखित दे पंक्तियों का निर्माण किया-

पोखरि रजोखरि अरु सब पोखरा।
राजा शिवसिंह अरु सब छोकरा।।

यद्यपि महाकवि की बाल्यावस्था के बारे में विशेष जानकारी नहीं है। विद्यापति ने प्रसिद्ध हरिमिश्र से विद्या ग्रहण की थी। विख्यात नैयायिक जयदेव मिश्र उर्फ पक्षधर मिश्र इनके सहपाठी थे। जनश्रुतियों से ऐसा ज्ञात होता है।

लोगों की धारणा यह है कि महाकवि अपने पिता गणपति ठाकुर के साथ बचपन से ही राजदरबार में जाया करते थे। किन्तु चौदहवीं सदी का शेषार्ध मिथिला के लिए अशान्ति और कलह का काल था। राजा गणेश्वर की हत्या असलान नामक यवन-सरदार ने कर दी थी। कवि के समवयस्क एवं राजा गणेश्वर के पुत्र कीर्तिसिंह अपने खोये राज्य की प्राप्ति तथा पिता की हत्या का बदला लेने के लिए प्रयत्नशील थे। संभवत: इसी समय महाकवि ने नसरतशाह और गियासुद्दीन आश्रमशाह जैसे महपुरुषों के लिए कुछ पदों की रचना की। राजा शिवसिंह विद्यापति के बालसखा और मित्र थे, अत: उनके शासन-काल के लगभग चार वर्ष का काल महाकवि के जीवन का सबसे सुखद समय था। राजा शिवसिंह ने उन्हें यथेष्ठ सम्मान दिया। बिसपी गाँव उन्हें दान में पारितोषिक के रूप में दिया तथा 'अभिनवजयदेव' की उपाधि से नवाजा। कृतज्ञ महाकवि ने भी अपने गीतों द्वारा अपने अभिन्न मित्र एवं आश्रयदाता राजा शिवसिंह एवं उनकी सुल पत्नी रानी लखिमा देवी (ललिमादेई) को अमर कर दिया। सबसे अधिक लगभग 250 गीतों में शिवसिंह की भणिता मिलती है।

किन्तु थोड़े ही समय में ही पुन: मिथिला पर दुर्दैव का भयानक कोप हुआ। यवनों के आसन्न आक्रमण का आभाष पाकर राजा शिवसिंह ने विद्यापति के संरक्षण में अपने परिजनों को नेपाल-तराई-स्थित द्रोणवार के अधिपति पुरादित्य के आश्रम में रजाबनौली भेज दिया। युद्ध क्षेत्र में सम्भवत: शिवसिंह मारे गये। विद्यापति लगभग 12 वर्ष तक पुरादित्य के आश्रम में रहे। वहीं इन्होने लिखनावली की रचना की उस समय के एक पद से ज्ञात होता है कि उनके लिए यह समय बड़ा दुरूखदायी था। शिवसिंह के छोटे भाई पद्मसिंह को राज्याधिकार मिलने पर औइनवार-वंशीय राजाओं का आश्रय पुन: महाकवि को प्राप्त हुआ और वे मिथिला वापस लौट आए। पद्मसिंह के केवल एक वर्ष के शासन के बाद उनकी धर्मपत्नी विश्वासदेवी मिथिला के राजसिंहासन पर बैठी, जिनके आदेश से उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ: शैवसर्वस्वसार तथा गंगावाक्यावली लिखे। विश्वासदेवी के बाद

राजा नरसिंहदेव 'दपंनारायण', महारानी धीरमती, महाराज धीरसिंह 'हृदयनारायण', महाराज भैरवसिंह 'हरिनारायण' तथा चन्द्रसिंह 'रूपनारायण' के शासनकाल में महाकवि को लगातार राज्याश्रय प्राप्त होता रहा था।

जन्मतिथि की तरह महाकवि विद्यापति ठाकुर की मृत्यु के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। इतना स्पष्ट है और जनश्रुतियाँ बताती है कि आधुनिक बेगूसराय जिला के मउबाजिदपुर (विद्यापतिनगर) के पास गंगातट पर महाकवि ने प्राण त्याग किया था। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह पद जनसाधारण में आज भी प्रचलित है–

'विद्यापतिक आयु अवसान
कातिक धवल त्रयोदसि जान।'

यहाँ एक बात स्पषट करना अनिवार्य है। विद्यापति शिव एवं शक्ति दोनों के प्रबल भक्त थे। शक्ति के रूप में उन्होंने दुर्गा, काली, भैरवि, गंगा, गौरी आदि का वर्णन अपनी रचनाओं में यथेष्ठ किया है। मिथिला के लोगों में यह बात आज भी व्याप्त है कि जब महाकवि

विद्यापति काफी उम्र के होकर रुग्न हो गए तो अपने पुत्रों और परिजनों को बुलाकर यह आदेश दिया–

"अब मैं इस शरीर का त्याग करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं गंगा के किनारे गंगाजल को स्पर्श करता हुआ अपने दीर्ध जीवन का अन्तिम सांस लूं। अत: आप लोग मुझे गंगालाभ कराने की तैयारी में लग जाएं। कहरिया को बुलाकर उस पर बैठाकर आज ही हमें सिमरिया घाट (गंगातट) ले चलें।"

अब परिवार के लोगों ने महाकवि का आज्ञा का पालन करते हुए चार कहरियों को बुलाकर महाकवि के जीर्ण शरीर को पालकी में सुलाकर सिमरिया घाट गंगालाभ कराने के लिए चल पड़े - आगे-आगे कहरिया पालकी लेकर और पीछे-पीछे उनके सगे-सम्बन्धी। रात-भर चलते-चलते जब सूर्योदय हुआ तो विद्यापति ने पूछा: 'भाई, मुझे यह तो बताओं कि गंगा और कितनी दूर है?'

"ठाकुरजी, करीब पौने दो कोस।' कहरियों ने जवाब दिया। इस पर आत्मविश्वास से भरे महाकवि यकाएक बोल उठे: 'मेरी पालकी को यहीं रोक दो। गंगा यहीं आएंगी।"

'ठाकुरजी, ऐसा संभव नहीं है। गंगा यहाँ से पौने दो कोस की दूरी पर बह रही है। वह भला यहाँ कैसे आऐगी? आप थोड़ी धैर्य रक्खें। एक घंटे के अन्दर हम लोग सिमरिया घाट पहुँच जाएंगे।'

'नहीं-नहीं, पालकी रोकें' महाकवि कहने लगे, 'हमें और आगे जाने की जरूरत नहीं। गंगा यहीं आएगी। अगर एक बेटा जीवन के अन्तिम क्षण में अपनी माँ के दर्शन के लिए जीर्ण शरीर को लेकर इतने दूर से आ रहा है तो क्या गंगा माँ पौने दो कोस भी अपने बेटे से मिलने नहीं आ सकती? गंगा आएगी और जरूर आएगी।'

इतना कहकर महाकवि ध्यानमुद्रा में बैठ गए। पन्द्रह-बीस मिनट के अन्दर गंगा अपनी उफनती धारा के प्रवाह के साथ वहाँ पहुँच गयी। सभी लोग आश्चर्य में थे। महाकवि ने सर्वप्रथम गंगा को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया, फिर जल में प्रवेश कर निम्नलिखित गीत की रचना की–

बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे।
छोड़इत निकट नयन बह नीरे।।
करनोरि बिलमओ बिमल तरंगे।
पुनि दरसन होए पुनमति गंगे।।
एक अपराध घमब मोर जानी।
परमल माए पाए तुम पानी।।
कि करब जप-तप जोग-धेआने।
जनम कृतारथ एकहि सनाने।।
भनई विद्यापति समदजों तोही।
अन्तकाल जनु बिसरह मोही।।

इस गंगा स्तुति का अर्थ कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

'हे माँ पतित पावनि गंगे, तुम्हारे तट पर बैठकर मैंने संसार का अपूर्व सुख प्राप्त किया। तुम्हारा सामीप्य छोड़ते हुए अब आँखों से आँसू बह रहे हैं। निर्मल तरंगोवानी पूज्यमती गंगे! मैं कर जोड़ कर तुम्हारी विनती करता हूँ कि पुनः तुम्हारे दर्शन हों।'

'मेरे एक अपराध को जानकर भी समा कर देना कि हे माँ!' 'मैंने तुम्हें अपने पैरों से स्पर्श कर दिया। अब जप-तप, योग-ध्यान की क्या आवश्यकता? एक ही स्नान में मेरा जन्म कृतार्थ हो गया। विद्यापति तुमसे (बार-बार) निवेदन करते हैं कि मृत्यु के समय मुझे मत भूलना।'

इतना ही नहीं, कवि विद्यापति ने अपनी पुत्री दुल्लहि को सम्बोधित करते हुए गंगा नदी के तट पर एक और महत्त्वपूर्ण गीत का निर्माण किया। यह गीत कुछ इस प्रकार है–

दुल्लहि तोर कतय छथि माय।
कहुँन ओ आबथु एखन नहाय।।
वृथा बुझथु संसार-विलास।
पल-पल नाना भौतिक त्रस।।
माए-बाप जजों सद्गति पाब।
सन्नति काँ अनुपम सुख आब।।
विद्यापतिक आयु अवसान।
कार्तिक धबल त्रयोदसि जान।।

इसका सारांश यह है कि महाकवि वयोवद्ध हो चुके हैं। अपने जीवन का अंत नजदीक देखकर इस नश्वर शरीर का त्याग करने के पवित्र तट पर अपने सखा-सम्बन्धियों के साथ पहुँच गये हैं। पूज्यशलीला माँ गंगा अपने इस महान यशस्वी पुत्र को अंक में समेट लेने के लिए प्रस्तुत हो गई हैं। इसी क्षण महाकवि विद्यापति अपनी एकलौती पुत्री को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, अही दुलारि, तुम्हारी माँ कहाँ है।? कहो न कि अब जल्दी से स्नान करके चली आएं। भाई, देरी करने से भला क्या होगा? इस संसार के भोग-विलास आदि को व्यर्थ समझें। यहाँ पल-पल नाना प्रकार का भय, कष्ट आदि का आगमन होता रहता है। अगर माता-पिता को सद्गति मिल जाये तो उसके कुल और परिवार के लोगों को अनुपम सुख मिलना चाहिए। क्या तुम्हारी माँ नहीं जानती हैं, जो आज जति पवित्र कार्तिक युक्त त्रयोदशी तिथि है। अब मेरे जीवन का अन्त निश्चित है।' इस तरह से गंगा के प्रति महाकवि ने अपनी अटूट श्रद्धा दिखाया। और इसके बाद ही उन्होंने जीवन का अन्तिम सांस इच्छानुसार गंगा के किनारे लिया।

नगेन्द्रनाथ गुप्त सन् 1440 ई. को महाकवि की मृत्यु तिथि का वर्ष मानते हैं। **म.म. उमेश मिश्र** के अनुसार सन् 1466 ई. के बाद तक भी विद्यापति जीवित थे। **डॉ. सुभद्र झा** का मानना है कि 'विश्वस्त अभिलेखों के आधार पर हम यह कहने की स्थिति में है कि हमारे कवि का समय 1352 ई. और 1448 ई. के मध्य का है। सन् 1448 ई. के बाद के व्यक्तियों के साथ जो विद्यापति की समसामयिकता को जोड़ दिया जाता है वह सर्वथा भ्रामक हैं।' **डॉ. विमानबिहारी मजुमदार** सन् 1460 ई. के बाद ही महाकवि का विरोधाकाल मानते हैं। डॉ. शिवप्रसाद सिंह विद्यापति का मृत्युकाल 1447 मानते हैं।

महाकवि विद्यापति ठाकुर के पारिवारिक जीवन का कोई स्वलिखित प्रमाण नहीं है, किन्तु मिथिला के उतेढ़पोथी से ज्ञात होता है कि इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम पत्नी से नरपति और हरपति नामक दो पुत्र हुए थे और दूसरी पत्नी से एक पुत्र वाचस्पति ठाकुर तथा एक पुत्री का जन्म हुआ था। संभवत: महाकवि की यही पुत्री 'दुल्लहि' नाम की थी जिसे मृत्युकाल में रचित एक गीत में महाकवि अमर कर गये हैं।

कालान्तर में विद्यापति के वंशज किसी कारणवश (शायद यादवों एवं मुसलमानों के उपद्रव से तंग आकर) विसपी को त्यागकर सदा के लिए सौराठ गाँव (मधुबनी जिला में स्थित समागाछी के लिए प्रसिद्ध गाँ) आकर बस गए। आज महाकवि के सभी वंशज इसी गाँव में निवास करते हैं। विद्यापति भारतीय साहित्य की शृंगार-परम्परा' के साथ-साथ 'भक्ति-परम्परा' के प्रमुख स्तंभों में से एक और मैथिली के सर्वोपरि कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनके काव्यों में मध्यकालीन मैथिली भाषा के स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है। इन्हें वैष्णव, शैव और शाक्त भक्ति के सेतु के रूप में भी स्वीकार किया गया है। मिथिला के लोगों को श्देसिल बयना सब जन मिट्ठा' का सूत्र दे कर इन्होंने उत्तरी-बिहार में लोकभाषा की जनचेतना को जीवित करने का महान् प्रयास किया है।

मिथिलांचल के लोकव्यवहार में प्रयोग किये जानेवाले गीतों में आज भी विद्यापति की शृंगार और भक्ति-रस में पगी रचनाएँ जीवित हैं। पदावली और कीर्तिलता इनकी अमर रचनाएँ हैं।

शृंगार रस के कवि विद्यापति

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ शुक्ल जी ने सम्वत् 1050 से माना है। वे मानते हैं कि प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आरम्भ होना चाहिए इसे ही वे वीरगाथा काल मानते हैं। उन्होंने इस सन्दर्भ में इस काल की जिन आरम्भिक रचनाओं का उल्लेख किया है उनमें विद्यापति एक प्रमुख रचनाकार हैं तथा उनकी प्रमुख रचनाओं का इस काल में बड़ा महत्त्व है। उनकी प्रमुख रचनाएं हैं- कीर्तिलता, कीर्तिपताका तथा पदावली। कीर्तिलता के बारे में यह स्पष्ट लिखा है कि-ऐसा जान पड़ता है कि कीर्तिलता बहुत कुछ उसी शैली में लिखी गई थी जिसमें चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज रासो लिखा था। यह भृंग और

भृंगी के संवाद-रूप में है। इसमें संस्कृत ओर प्राकृत के छन्दों का प्रयोग हुआ है। संस्कृत और प्राकृत के छन्द रासो में बहुत आए हैं। रासो की भांति कीर्तिलता में भी गाथा छन्द का व्यवहार प्राकृत भाषा में हुआा है।

उपरोक्त विवरण से यह तो स्पष्ट है कि विद्यापति को आदि काल की ही परिधि में रखना समीचीन होगा। विद्यापति के पदों में मधुरता और गेयता का गुण अद्वितीय है। **अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'** ने उनके काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है- 'गीत गोविन्द के रचनाकार जयदेव की मधुर पदावली पढ़कर जैसा अनुभव होता है, वैसा ही विद्यापति की पदावली पढ़ कर। अपनी कोकिल कंठता के कारण ही उन्हें 'मैथिल कोकिल' कहा जाता है।'

विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ठ, एवं मैथिली में कविता रची। इसके इलावा भूपरिक्रमा, पुरुषपरीक्षा, लिखनावली आदि अनेक रचनाएँ साहित्य को दीं। कीर्तिलता और कीर्तिपताका नामक रचनाएं अवहट्ठ में लिखी हैं। पदावली उनकी हिन्दी-रचना है और वही उनकी प्रसिद्धि का कारण हैं। पदावली में कृष्ण-राधा विषयक शृंगार के पद हैं। इनके आधार पर इन्हें हिन्दी में राधा-कृष्ण-विषयक शृंगारी काव्य के जन्म दाता के रूप में जाना जाता है।

विद्यापति के शृंगारी कवि होने का कारण बिल्कुल स्पष्ट है। वे दरबारी कवि थे और उनके प्रत्येक पद पर दरबारी वातावरण की छाप दिखाई देती है। पदावली में कृष्ण के कामी स्वरूप को चित्रित किया गया है। यहां कृष्ण जिस रूप में चित्रित हैं वैसा चित्रण करने का दुस्साहस कोई भक्त कवि नहीं कर सकता। इसके इलावा राधा जी का भी चित्रण मुग्धा नायिका के रूप में किया गया है। विद्यापति वास्तव में कवि थे, उनसे भक्त के समान अपेक्षा करना ठीक नहीं होगा। उन्होंने नायिका के वक्षस्थल पर पड़ी हुई मोतियों की माला का जो वर्णन किया है उससे उनके कवि हृदय की भावुकता एवं सौंदर्य अनुभूति का अनुमान लगाया जा सकता है। एक उदाहरण देखिए-

कत न वेदन मोहि देसि मरदाना।
हट नहिं बला, मोहि जुबति जना।
भनई विद्यापति, तनु देव कामा।
एक भए दूखन नाम मोरा बामा।
गिरिवर गरुअपयोधर परसित।
गिय गय मौतिक हारा।

काम कम्बु भरि कनक संभुपरि।
ढारत सेरसरि धारा।

विद्यापति की कविता शृंगार और विलास की वस्तु है, उपासना एवं साधना उनका उद्देश्य नहीं है। राधा और कृष्ण साधारण स्त्रीपुरुष के रूप में परस्पर प्रेम करते हैं। स्वयं विद्यापति ने अपनी रचना कीर्तिपताका में लिखा है- सीता की विरह वेदना सहन करने के कारण राम को काम-कला-चतुर अनेक स्त्रियों के साथ रहने की वेदना उत्कट इच्छा उन्होंने कृष्णावतार लेकर गोपियों के साथ विभिन्न प्रकार से कामक्रीडा की। अत: स्पष्ट है कि स्वयं कवि की दृष्टि में कृष्ण और राधा शृंगार रस के नायक-नायिका ही थे।

विद्यापति ने नारी का नख-शिख वर्णन अपनी कविता में किया है, तथा मूलत: शृंगार रस का प्रयोग किया हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी शृंगारी मनोवृत्ति थी। अत: उनसे भक्त जैसे काव्य-व्यवहार की अपेक्षा करना कदाचिद् एक तरह का उनसे अन्याय ही है। उन पर गीतगोविन्द के रचनाकार जयदेव का प्रभाव है। गीतगोविन्द में शृंगार रस का भरपूर प्रयोग हुआ है, तथा जो चित्र जयदेव ने श्री कृष्ण का गीतगोविन्द में प्रस्तुत किया है ठीक वैसा ही चरित्रंकन विद्यापति ने पदावली में किया है। स्पष्ट है जयदेव और विद्यापति ने जो चित्र अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है वह महाभारतकालीन धर्मस्थापना वाले श्रीकृष्ण से नितान्त भिन्न है। महाभारत में राधा जहां श्रीकृष्ण की प्रेरक शक्ति के रूप में दिखाई देतीं हैं, वहीं पदावली में विद्यापति ने कृष्ण की उद्दाम कामवासनाओं से प्रेरित राधा का रूप देखने को मिलता है। पदावली में जो कुछ वर्णित है उससे कोई भी उन्हें भक्त कवि नहीं मान सकता क्योंकि भक्त कवि अवने आराध्य को इस प्रकार शृंगार से मण्डित करने का दुस्साहस नहीं कर सकता। विशेषकर, दूती एवं सखी-शिक्षा-प्रसंग में जो राधाकृष्ण का अमर्यादित रूप प्रस्तुत किया गया है वह केवल कोई शृंगारी कवि ही कर सकता है, भक्त कवि नहीं। अतिशय शृंगार का एक वर्णन विद्यापति की पदावली से देखिए-

लीलाकमल भमर धरु वारि।
चमकि चलिल गोरि-चकित निहारि।
ले भेल बेकत पयोधर सोम।
कनक-कनक हेरि काहिन लोभ।
आध भुकाएल, बाघ उदास।

केचे-कुंभे कहि गेल अप्प आस।

कुछ आलोचक उन्हें भक्त भी मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि निम्बार्क द्वारा प्रतिपादित द्वैताद्वैत सिध्द्धान्त के अनुरूप रागानुगाभक्ति का दर्शन इनके पदों में होता है और उनके पदों में राधाकृष्ण की लीलाओं के वर्णन भक्ति-भावना के परिप्रेक्ष्य में देखे जाने चाहिए। डॉ. ग्रियर्सन भी इसी मत की ही तरह लिखते हैं- विद्यापति के पद लगभग सब के सब वैष्णव पद या भजन है और सभी हिन्दु बिना किसी काम-भावना का अनुभव किए विद्यापति की पदावली के पदों का गुणगान करते हैं। **श्री नगेन्द्र नाथ गुप्त** ने तो उन्हें भक्त प्रतिपादित करते हुए विद्यापति के पदों को शुद्ध अध्यात्मभाव से युक्त बताया है। डॉ जनार्दन मिश्र ने विद्यापति की पदावली को आध्यात्मिक विचार तथा दार्शनिक गूढ रहस्यों से परिपूर्ण माना। **डॉ. श्यामसुन्दर दास** के अनुसार हिन्दी के वैष्णव साहित्य के प्रथम कवि मैथिल कोकिल विद्यापति हैं। उनकी रचनाएं राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओतपोत हैं।

कुछ आलोचकों का कहना है कि विद्यापति ने पदावली की रचना वैष्णव साहित्य के रूप में की है। गीतगोविन्द की भाँति उनकी पदावली में राधा-कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति की झांकी दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने अपने इष्ट की उपासना सामाजिक रूप में की है। इस दृष्टिकोण से उन्होंने विद्यापति के उन पदों को उद्धृत किया है, जो विद्यापति ने राधा, कृष्ण, गणेश, शिव आदि की वन्दना के लिए लिखे हैं। राधा की वन्दना-विषयक एक पद देखिए-

देखदेख राधा-रूप अपार।
अपुरुष के बिहि आनि मिला ओल।
खिति-बल लावनि-सार।
अंगहि अंग अनंग मुरछायत,
हेरए पडए अधीर।

यही नहीं, उन्होंने प्रार्थना एवं नर-नारी के प्रसंग में भी अनेक देवीदेवताओं, राधाकृष्ण, दुर्गा, शिव, विष्णु, सूर्य आदि की वन्दना की है। कुछ समालोचक ऐसे भी हैं, जो विद्यापति के शृंगारिक पदों की ओर ध्यान दिए बगैर ही उनके प्रार्थना सम्बन्धी पदों के आधार पर ही उन्हें भक्त कवि मान लेते हैं। यह सत्य है कि उन के कुछ भक्ति परक पद हैं, परन्तु शृंगार परक रचना अधिक है यहां तक कि भक्ति परक पदों में भीशृंगार का अतिशय वर्णन किया गया है।

विद्यापति के अनेक पदों से यह स्पष्ट है कि विद्यापति वास्तव में कोई वैष्णव नहीं थे, केवल परम्परा के अनुसार ही उन्होंने ग्रंथ के आरम्भ में गणेश आदि की वन्दना की हैं। उनके पदों को भी दो भागों में बांट सकते हैं।

1–राधाकृष्ण विषयक,

2 शिवगौरी सम्बन्धी।

राधा कृष्ण सम्बन्धी पदों में भक्ति–भावना की उदात्तता एवं गम्भीरता का अभाव हैं तथा इन पदों में वासना की गन्ध साफ दिखाई देती है। धार्मिकता, दार्शनिकता या आध्यात्मिकता को खोजना असम्भव है। शिव–गौरी सम्बन्धी पदों में वासना का रंग नहीं है तथा इन्हें भक्ति की कोटि में रखा जा सकता है।

राधा कृष्ण विषयक पदों में विद्यापति ने लौकिक प्रेम का ही वर्णन किया है। राधा और कृष्ण साधारण स्त्रीपुरुष की ही तरह परस्पर प्रेम करते प्रतीत होते हैं तथा भक्ति की मात्रा न के बराबर है। इस तरह कहा जा सकता है कि विद्यापति शृंगारी कवि हैं उनके पदों में माधुर्य पग पग पर देखा जा सकता हैं। उन्होंने राधाकृष्ण के नामों का प्रयोग आराधना के लिए नहीं किया है अपितु साधारण नायक के रूप में पेश किया है तथा विद्यापति का लक्ष्य पदावली मेंशृंगार निरूपण करना है। कवि के काव्य का मूल स्थायी भावशृंगार ही है। राज्याश्रित रहते हुए उन्होंने राजा की प्रसन्नता में शृंगारपरक रचनाएं ही कीं, इसमें सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त विद्यापति के समय में भक्ति की तुलना में शृंगारिक रचना का महत्त्व अधिक था। जयदेव की गीतगोविन्द जैसी रचनाएं इसी कोटि की है।

प्रमुख रचनाएँ

महाकवि विद्यापति संस्कृत, अवहट्ठ, मैथिली आदि अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित थे। शास्त्र और लोक दोनों ही संसार में उनका असाधारण अधिकार था। कर्मकाण्ड हो या धर्म, दर्शन हो या न्याय, सौन्दर्यशास्त्र हो या भक्ति–रचना, विरह–व्यथा हो या अभिसार, राजा का कृतित्त्व गान हो या सामान्य जनता के लिए गया में पिण्डदान, सभी क्षेत्रों में विद्यापति अपनी कालजयी रचनाओं की बदौलत जाने जाते हैं। महाकवि ओईनवार राजवंश के अनेक राजाओं के शासनकाल में विराजमान रहकर अपने वैदुष्य एवं दूरदर्शिता से उनका मार्गदर्शन करते रहे। जिन राजाओं ने महाकवि को अपने यहाँ सम्मान के साथ रखा उनमें प्रमुख है–

(क) देवसिंह,
(ख) कीर्तिसिंह,
(ग) शिवसिंह,
(घ) पद्मसिंह,
(च) नरसिंह,
(छ) धीरसिंह,
(ज) भैरवसिंह और
(झ) चन्द्रसिंह।

इसके अलावे महाकवि को इसी राजवंश की तीन रानियों का भी सलाहकार रहने का सौभाग्य प्राप्त था। ये रानियाँ है–

(क) लखिमादेवी (देई)
(ख) विश्वासदेवी, और
(ग) धीरमतिदेवी।

कृतियाँ

संस्कृत में

भूपरिक्रमा (राजा देव सिंह की आज्ञा से विद्यापति ने इसे लिखा। इसमें बलराम से सम्बन्धित शाप की कहानियों के बहाने मिथिला के प्रमुख तीर्थ-स्थलों का वर्णन है।),

पुरुषपरीक्षा (मैथिली अकादमी, पटना से प्रकाशित),

लिखनावली,

विभागसार (मैथिली अकादमी, पटना तथा विद्यापति-संस्कृत-ग्रन्थावली, भाग-1 के रूप में कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा से प्रकाशित),

शैवसर्वस्वसार (‘ ‘),

शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूत पुराण-संग्रह (विद्यापति-संस्कृत-ग्रन्थावली, भाग-2 के रूप में कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा से प्रकाशित)

दानवाक्यावली (‘ ‘),

गंगावाक्यावली,

दुर्गाभक्तितरंगिणी (कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा से प्रकाशित),

गयापत्तलक।

वर्षकृत्य

मणिमंजरी नाटक (मैथिली अकादमी, पटना से प्रकाशित)

गोरक्षविजय नाटक (कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा से प्रकाशित 'मिथिला परम्परागत नाटक-संग्रह' में संकलित।)

अवहट्ठ में

विद्यापति गीत

ससन-परस रबसु अस्बर रे देखल धनि देह।
नव जलधर तर चमकय रे जनि बिजुरी-रेह।।
आजु देखलि धनि जाइत रे मोहि उपजल रंग।
कनकलता जनि संचर रे महि निर अवलम्ब।।
ता पुन अपरुब देखल रे कुच-जुग अरविन्द।
विकसित नहि किछुकारन रे सोझा मुख चन्द।।
विद्यापति कवि गाओल रे रस बुझ रसमन्त।
देवसिंह नृप नागर रे, हासिनि देइ कन्त।।

अर्थ

हवा के स्पर्श से वस्त्र नीचे गिर गया, इसीलिए धनि (नायिका) के शरीर (देह) को देख पाया। ऐसा लगा जैसे मेघ के अन्दर से बिजली चमक उठा हो। आज मैंने नायिका के जाते देखा जिसे देखकर मेरे अन्दर अनुराग उमड़ आया। उसको देखकर मुझे ऐसा लगा कि पृथ्वी पर कोई कनकलता भ्रमण कर रही हो। पुनः एक आश्चर्य देखा कि उस कनकलता में स्तन-युगल रूपी कमल विद्यमान था, परन्तु वह खिला हुआ नहीं था। नहीं खिलने का कारण था- सामने में मुख रूपी चान्द। अर्थात् कमल सूर्य के समक्ष खिलता है, परन्तु चंद्रोदय होते ही बन्द हो जाता है। महाकवि विद्यापति इस पद को गाते हुए कहते हैं कि इसका रस-मर्म कोई रसिक ही समझ सकता है। हामिनीदेवी के पतिदेव राजा देवसिंह बहुत बड़े रसिक हैं।

जाइत पेखलि नहायलि गोरी।
कल सएँ रूप धनि आनल चोरी।।
केस निगारहत बह जल धारा।
चमर गरय जनि मोतिम-हारा।।
तीतल अलक-बदन अति शोभा।
अलि कुल कमल बेढल मधुलोभा।।
नीर निरंजन लोचन राता।
सिंदुर मंडित जनि पंकज-पाता।।
सजल चीर रह पयोधर-सीमा।
कनक-बेल जनि पडि गेल हीमा।।
ओ नुकि करतहिं जाहि किय देहा।
अबहि छोडब मोहि तेजब नेहा।।
एसन रस नहि होसब आरा।
इहे लागि रोइ गरम जलधारा।।
विद्यापति कह सुनहु मुरारि।
वसन लागल भाव रूप निहारि।।

अर्थ

रास्ते में चलते-चलते एक सद्यः स्नाता सुन्दरि को देखा। न जाने इस नायिका ने कहाँ से यह रूप (विलक्षण) चुराकर लाई है? गीले केस (बाल) को निचोड़ते ही जल का धार टपकने लगा। चँवर से मानो मोती का हार चू रहा हो। भीगे हुए अलक के कारण मुखमण्डल अति सुन्दर (भव्य) लग रहा था, जैसे रस का लोभी भ्रमर मानो कमल को चारों ओर से घेर लिया है। काजल सही ढ़ंग से साफ हो गया था। आंखें एकदम लाल थी। ऐसा लग रहा था जैसे कमल के पत्ते पर किसी ने मिन्दुर घोल दिया है। भीगा वस्त्र स्तन के किनारे में था। लग रहा था कि जैसे सोने के बेल को पाल

(सर्दी) मार दिया हो। वह (वस्त्र) छिपा-छिपा कर अपने शरीर को देख रही थी, जैसे अभी-अभी यह स्तन मुझे अलग कर देगा, मेरा स्नेह छोड़ देगा। अब मुझे ऐसा रस नहीं मिलेगा, इसीलिए शायद शरीर पर के बहते जल के धार रो रहा था। महाकवि विद्यापति कहते हैं कि हे कृष्ण, सौन्दर्य को देखकर वस्त्र को नायिका से स्नेह हो गया था।

जाइत देखलि पथ नागरि सजनि गे, आगरि सुबुधि सेगानि।
कनकलता सनि सुनदरि सजनि में, विहि निरमाओलि आनि।।
हस्ति-गमन जकां चलइत सजनिगे, देखइत राजकुमारि।
जनिकर एहनि सोहागिनि सजनि में, पाओल पदरथ वारि।।
नील वसन तन घरेल सजनिगे, सिरलेल चिकुर सम्हारि।
तापर भमरा पिबय रस सजनिगे, बइसल आंखि पसारि।।
केहरि सम कटि गुन अछि सजनि में, लोचन अम्बुज धारि।।
विद्यापति कवि गाओलसजनि में, गुन पाओल अवधारि।।

अर्थ

आज सुन्दरि को राह चलते देखा। वो बुद्धिमती थी, चालाक थी, साथ ही साथ कलकलता के समान सुन्दर भी। विधाता ने काफी सोच-विचार करने के बाद उसका निर्माण (सृजन) किया है। हथिनी के चाल में चलती है, किसी वैभवपूर्ण राजकुमारी जैसी लगती है, जिसे इस तरह की सुहागिन (पत्नी) मिलेगी उसे तो मानो चारों पदार्थ मिल जाएंगे। वह अपने शरीर को नीले रंग के परिधान से ढक रखी थी। माथ के केस का भव्य एवं कलात्मक विन्यास बनाई थी। परन्तु उस पर भी भँवर निश्चिन्त होकर अपने पंख फैलाकर बैठकर उसका रसपान कर रहा था। शेरनी के समान पतली कमर, कमल के समान नेत्र, आह! महाकवि विद्यापति उस सुन्दरि को गुण का सागर के रूप में देखे, अतः उन्होंने इस गीत का निर्माण किया।

जखन लेल हरि कंचुअ अचोडि
कत परि जुगुति कयलि अंग मोहि।।
तखनुक कहिनी कहल न जाय।
लाजे सुमुखि धनि रसलि लजाय।।
कर न मिझाय दूर दीप।
लाजे न मरय नारि कठजीव।।
अंकम कठिन सहय के पार।
कोमल हृदय उखडि गेल हार।।
भनह विद्यापति तखनुक झन।
कओन कहय सखि होयत बिहान।।

अर्थ

जब भगवान कृष्ण (हरि) ने कंचुकी (वस्त्र) बाहर कर दिया तब मैंने अपने शरीर की लाज बचाने के लिए क्या-क्या यत्न नहीं किए। उस समय की बात का क्या जिक्र करूँ, मैं तो लाज (शर्म) से सिकुड़ गई अर्थात् लाज से पाठ (लकड़ी) के समान कठोर हो गई। जलता दिपक कुछ दूरी पर था, जिसे मैं हाथ से बुझा नहीं सकी। नारी कठ जीव (लकड़ी के समान) होती है, वह लाज से कदापि मर नहीं सकती। कठोर आलिंगन को कौन बर्दाश्त करे, इसलिए कोमल हृदय पर हार का दाग पड़ गया। महाकवि विद्यापति उस समय का रहस्य बताते हैं कि कोई भी यह नहीं कह रहा था कि आज भोर (प्रातः) होगी अर्थात् रात में तो सखी, ऐसा लग रहा था, जैसे सुबह होगी ही नहीं।

कि कहब हे सखि आजुक रंग।
सपनहिं सूतल कुपुरूप संग।।
बड सुपुक्ख बलि आयल घाइ।
सूति रहल मोर आंचर झंपाइ।।
कांचुलि खोलि आंलिगल देल।
मोहि जगाय आपु जिंद गेल।
हे बिहि हे बिहि बड दुम देल।।
से दुख हे सखि अबहु न गेल।।
भनई विद्यापति एस रश इंद।
भेक कि जान कुसुम मकरंद।।

अर्थ

हे सखि, आज के रंग-ढंग (प्रीति और अभिसार) के बारे में क्या बताऊँ! एक अनाड़ी, नासमझ और अनुभवहीन पुरुष मेरे सपने में मेरे पास आया और सो गया। वह पुरुष वैसे तो मेरे पास ठीक-ठाक ही आया था और मेरे आँचल (साड़ी) से मुँह ढककर सो गया। सर्वप्रथम तो वह मेरे अंगिया (ब्लाउज) खोल दिया और फिर अपने बाहुपास में समेट लिया। इसके बाद क्या बताऊँ सखी.. .....वह मूर्ख (!) मुझे तो जगा दिया परन्तु स्वयं शान्त हो गया। हे भगवान, बाप रे बाप, मुझे कितना भयंकर दुख दे दिया। सखी! सच कहूँ तो वह दुख मैं अभी तक नहीं भूली हूँ। महाकवि विद्यापति कहते हैं कि यह रस नहीं रस का आभास है। फूल और पराग का मर्म मेंढ़क भला क्या समझ सकता है!

मानिनि आब उचित नहि मान।
एखनुक रंग एहन सन लागय जागल पए पंचबान।।
जूडि रयनि चकमक करन चांदनि एहन समय नहि आन।
एहि अवसर पिय मिलन जेहन सुख जकाहि होय से जान।।
रभसि रभसि अलि बिलसि बिलसि कलि करय मधु पान।
अपन-अपन पहु सबहु जेमाओल भूखल तुऊ जजमान।।
त्रिबलि तरंग सितासित संगम उरज सम्भु निरमान।
आरति पति मंगइछ परति ग्रह करु धनि सरबस दान।।
दीप-बाति सम भिर न रहम मन दिढ करु अपन गेयान।
संचित मदन बेदन अति दारुन विद्यापति कवि भान।।

हे नायिका! अब अर्थ इतना भी रुसना-फुलना उचित नहीं है। इन बातों को अब छोड़ भी दो। देखो तो, ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे कामदेव अपने पांच बाणों के साथ जग चुके हों। रात कितना आकर्षक लग रहा है। चारों तरफ स्पष्ट दिखाई दे रहा है (शुक्ल पक्ष अपनी चढ़ाव में जो है)। इससे अच्छा (उपयुक्त) पला भला और क्या हो सकता (अभिसार के लिए) है। इस मनोनुकूल क्षण में प्रियतम से मिलन का जो आनन्द मिलता है उसका अनुभव (अनुमान) वही कर सकता है, जिसने ऐसे पल को कभी भोगा है। भँवर रस से हुए मदमत होकर कली को तोर रहा है, मधुपान कर रहा है। दोनों तरफ से कहीं कोई अवरोध नहीं है। अर्थात् सभी अपने-अपने प्रियतम की भूख मिटा चुके हैं, केवल तुम्हारा प्रियतम अभी तक भूखा है। तुम्हारे नाभि के ऊपर में लहर तरंगित है। संगम पर अवस्थित दोनों स्तन (छाती) शिव-शम्भु के समान लग रहे हैं। इस तरह के अवसर पर तुम्हारा प्रियतम आर्त होकर खड़े हैं। तुमसे कुछ मांग रहा है- याचक मुद्रा में। हे मानिनि (नायिका), तुम ऐसे पल में अपना सर्व दान कर दो। अब भी अपने मन को दृढ़ करो। इस चंचल मन का क्या भरोसा! यह तो दीपक के बाती जैसे हमेशा काँपता रहेगा। महाकवि विद्यापति ऐसी स्थिति का बोध कराते हुए कहते हैं कि कामेच्छा अत्यधिक मात्र में एकत्रित हो जाने पर बहुत कष्ट देता है।

कुच-जुग अंकुर उतपत् भेल।
चरन-चपल गति लोचन लेल।।
अब सब अन रह आँचर हाथ

लाजे सखीजन न पूछय बात।।
कि कहब माधव वयसक संधि।
हेरइत मानसिज मन रहु बंधि।।
तइअओ काम हृदय अनुपाम।
रोपल कलस ऊँच कम ठाम।।
सुनइत रस-कथा थापय चीत।
जइसे कुरंगिनि सुय संगीत।।
सैसव जीवन उपजल बाद।
केओ नहि मानय जय अवसाद।।
विद्यापति कौतुक बलिहारि।
सैसव से तनु छोडनहि पारि।।
सैसव जीवन दुहु सिलि गेल।
श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।।
वचनक चातुरि नहुनहु हास।
धरनिये चान कयल परकास।।
मुकुर हाथ लय करम सिंगार।
सखइ पूछय कइसे सुरत-विहार।।
निरंजन अपन पयेचर हेरि।।
पहिले बदरि सम पुन नवरंग।
दिन-दिन अनंग अगोरल अंग।।
माधव पेखल अपरुब बाला।
सैसव जौवन दुहु एक भेला।।
विद्यापति कह तुहु अगेआनि।
दुहु एक जोग इह के कह सयानि।।
कान्ह हेरल छल मन बड़ साध।
कान्ह हेरइत भेलएत परमाद।।
तबधरि अबुधि सुगुधि हो नारि।
कि कहि कि सुनि किछु बुझय न पारि।।
साओन घन सभ झर दु नयान।
अविरल धक-धक करय परान।।

की लागि सजनी दरसन भेल।
रभसें अपन जिब पर हाथ देल।।
न जानिअ किए करु मोहन चारे।
हेरइत जिब हरि लय गेल मारे।।
एत सब आदर गेल दरसाय।
जत बिसरिअ तत बिसरि न जाय।।
विद्यापति कह सुनु बर नारि।
धैरज धरु चित मिलब मुरारि।।
कंटक माझ कुसुम परगास।
भमर बिकल नहि पाबय पास।।
भमरा भेल कुरय सब ठाम।
तोहि बिनु मालति नहिं बिसराम।।
रसमति मालति पुनु पुनु देखि।
पिबय चाह मधु जीव उपेंखि।।
ओ मधुजीवि तोहें मधुरासि।
सांधि धरसि मधु मने न लजासि।।
अपने मने धनि बुझ अबगाही।
तोहर दूषन बध लागत काहि।।
भनहि विद्यापति तओं पए जीव।
अधर सुधारस जओं परपीब।।
कुंज भवन सएँ निकसलि रे रोकल गिरिधारी।
एकहि नगर बसु माधव हे जनि करु बटमारी।।
छोड कान्ह मोर आंचर रे फाटत नब सारी।
अपजस होएत जगत भरि हे जानि करिअ उधारी।।
संगक सखि अगुआइलि रे हम एकसरि नारी।
दामिनि आय तुलायति हे एक राति अन्हारी।।
भनहि विद्यापति गाओल रे सुनु गुनमति नारी।
हरिक संग कछु डर नहि हे तोंहे परम गमारी।।
आहे सधि आहे सखि लय जनि जाह।
हम अति बालिक आकुल नाह।।

गोट-गोट सखि सब गेलि बहराय।
ब केबाड पहु देलन्हि लगाय।।
ताहि अवसर कर धयलनि कंत।
चीर सम्हारइत जिब भेल अंत।।
नहि नहि करिअ नयन ढर नीर।
कांच कमल भमरा झिकझोर।।
जइसे डगमग नलिनिक नीर।
तइसे डगमग धनिक सरीर।।
भन विद्यापति सुनु कविराज।
आगि जारि पुनि आमिक लाज।।
सामरि हे झामरि तोर दहे।
कह कह कासँए लायलि नहे।।
निन्दे भरल अछि लोचन तोर।
कोमल बदन कमल रुचि चारे।।
निरस धुसर करु अधर पँवार।
कोन कुबुधि लुतु मदन-भंडार।।
कोन कुमति कुच नख-खतदेल।
हा-हा सम्भु भागन भेय गेल।।
दमन-लता सम तनु सुकुमार।
फूटल बलय टुटल गुमहार।।
केस कुसुम तोर सिरक सिन्दूर।
अलक तिलक हे सेहो गेल दूर।।
भनइ विद्यापति रति अवसान।
राजा सिंवसिंह ईरस जान।।
कि कहब हे सखि रातुक बात।
मानक पइल कुबानिक हाथ।।
काच कंचन नहि जानय मूल।
गुंजा रतन करय समतूल।।
जे किछु कभु नहि कला रस जान।
नीर खीर दुहु करय समान।।

तन्हि सएँ कइसन पिरिति रसाल।
बानर-कंठ कि सोतिय माल।।
भनइ विद्यापति एह रस जान।
बानर-मुह कि सोभय पान।।
आजु दोखिअ सखि बड़ अनमन सन, बदन मलिन भेल तारो।
मन्द वचन तोहि कओन कहल अछि, से न कहिअ किअ मारो।
आजुक रयनि सखि कठि बितल अछि, कान्ह रभस कर मंदा।
गुण अवगुण पहु एकओ न बुझलनि, राहु गरासल चंदा।।
अधर सुखायल केस असझासल, धामे तिलक बहि गेला।
बारि विलासिनि केलि न जानथि, भाल अकण उड़ि गेला।।
भनइ विद्यापति सुनु बर यौवति, ताहि कहब किअ बाधे।
जे किछु पहुँ देल आंचर बान्हि लेल, सखि सभ कर उपहासे।।
कामिनि करम सनाने
हेरितहि हृदय हनम पंचनाने।
चिकुर गरम जलधारा
मुख ससि डरे जनि रोअम अन्हारा।
कुच-जुग चारु चकेबा
निअ कुल मिलत आनि कोने देवा।
ते संकाएँ भुज-पासे
बांधि धयल उडि जायत अकासे।
तितल वसन तनु लागू
मुनिहुक विद्यापति गाबे
गुनमति धनि पुनमत जन पाबे।
नन्दनक नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरलि बजाब।
समय संकेत निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाव।।
साभरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल, फिरि फिरि ततहि निहारि।।
गोरस बेचरा अबइत जाइत, जनि-जनि पुछ बनमारि।
तोंहे मतिमान, सुमति मधुसूदन, वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति, बन्दह नन्द किसोरा।।

अम्बर बदन झपाबह गोरि।
राज सुनइ छिअ चांदक चोरि।।
घरे घरे पहरु गेल अछ जोहि।
अब ही दूखन लागत तोहि।।
कतय नुकायब चांदक चोरि।
जतहि नुकायब ततहि उजोरि।।
हास सुधारस न कर उजोर।
बनिक धनिक धन बोलब मोर।।
अधर समीप दसन कर जोति।
सिंदुर सीम बैसाउलि मोति।।
भनइ विद्यापति होहु निसंक।
चांदुह कां किछु लागु कलंक।।
चन्दा जनि उग आजुक राति।
पिया के लिखिअ पठाओब पांति।।
साओन सएँ हम करब पिरीति।
जत अभिमत अभि सारक रिति।।
अथवा राहु बुझाओब हंसी
पिबि जनु उगिलह सीतल ससी।।
कोटि रतन जलधर तोहें लेह।
आजुक रमनि धन तम कय देह।।
भनइ विद्यापति सुभ अभिसार।
भल जल करथइ परक उपकार।।
ए धनि माननि करह संजात।
तुअ कुच हेमघाट हार भुजंगिनी ताक उपर धरु हाथ।।
तोंहे छाडि जदि हम परसब कोय। तुअ हार-नागिनि कारब माथे।।
हमर बचन यदि नहि परतीत। बुझि करह साति जे होय उचीत।।
भुज पास बांधि जघन तले तारि। पयोधर पाथर अदेह मारि।।
उप कारा बांधि राखह दिन-राति। विद्यापति कह उचित ई शादी।।
माधव ई नहि उचित विचार।
जनिक एहनि धनि काम-कला सनि से किअ करु बेभिचार।।

प्रनहु चाहि अधिक कय मानय हदयक हार समाने।
कोन परि जुगुति आनके ताकह की थिक तोहरे गेआने।।
कृपिन पुरुषके केओ नहि निक कह जग भरि कर उपहासे।
निज धन अछइत नहि उपभोगब केवल परहिक आसे।।
भनइ विद्यापति सुनु मथुरापति ई थिक अनुचित काज।
मांगि लायब बित से जदि हो नित अपन करब कोन काज।।
सजनी कान्ह कें कहब बुझाइ।
रोपि पेम बिज अंकुर मूड़ल बांढब कओने उपाइ।।
तेल-बिन्दु दस पानि पसारिअ ऐरान तोर अनुराग।
सिकता जल जस छनहि सुखायल ऐसन तोर सोहाग।।
कुल-कामिली छलौं कुलटा भय गेलौं तनिकर बचन लोभाइ।
अपेनहि करें हमें मूंड मूडाओल कान्ह सेआ पेम बढ़ाइ।।
चोर रमनि जनि मने-मने रोइअ अम्बर बदन भपाइ।
दीपक लोभ सलभ जनि घायल से फल पाओल घाइ।।
भनइ विद्यापति ई कलयुग रिति चिन्ता करइ न कोई।
अपन करम-दोष आपहि भोगइ जो जनमान्तर होइ।।
अभिनव पल्लव बइसंक देल।
धवल कमल फुल पुरहर भेल।।
करु मकरंद मन्दाकिनि पानि।
अरुन असोग दीप दहु आनि।।
माह हे आजि दिवस पुनमन्त।।
करिअ चुमाओन राय बसन्त।।
संपुन सुधानिधि दधि भल भेल।
भगि-भगि भंगर हंकराय गेल।।
केसु कुसुम सिन्दुर सम भास।
केतकि धुलि बिथरहु पटबास।।
भनइ विद्यापति कवि कंठहार।
रस बझ सिवसिंह सिव अवतार।।
अभिनव कोमल सुन्दर पात।
सगर कानन पहिरल पट रात।

मलय-पवन डोलय बहु भांति
अपन कुसुम रसे अपनहि माति।।
देखि-देखि माधव मन हुलसंत।
बिरिन्दावन भेल बेकत बसंत।।
कोकिल बोलाम साहर भार।
मदन पाओल जग नव अधिकार।।
पाइक मधुकर कर मधु पान।
भमि-भमि जोहय मानिनि-मान।।
दिसि-दिसि से भमि विपिन निहारि।
रास बुझावय मुदित मुरारि।
भनइ विद्यापति ई रस गाव।
राधा-माधव अभिनव भाव।।
सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज, की सरसिज बिनु सूरे।
जौबन बिनु तन, तन बिनु जौबन की जौक पिअ दूरे।।
सखि हे मोर बड दैब विरोधी।
मदन बोदन बड पिया मोर बोलछड, अबहु देहे परबोधी।।
चौदिस भमर भम कुसुम-कुसुम रम, नीरसि भाजरि पीबे।
मंद पवन बह, पिक कुहु-कुहु कह, सुनि विरहिनि कइसे जीवे।।
सिनेह अछत जत, हमे भेल न टुटत, बड बोल जत सबथीर।
अइसन के बोल दुहु निज सिम तेजि कहु, उछल पयोनिधि नीरा।।
भनइ विद्यापति अरे रे कमलमुखि, गुनगाहक पिय तोरा।
राजा सिवसिंह रुपानरायन, रहजे एको नहि भोरा।।
लोचन धाय फोघायल हरि नहिं आयल रे।
सिव-सिव जिव नहिं जाय आस अरुझायल रे।।
मन कर तहाँ उडि जाइ जहाँ हरि पाइअ रे।
पेम-परसमनि-पानि आनि उर लाइअ रे।।
सपनहु संगम पाओल रंग बढाओलरे।
से मोर बिहि विघटाओल निन्दओ हेराओल रे।।
सुकवि विद्यापति गओल धनि धइरज धरु रे।
अचिरे मिलत तोर बालमु पुरत मनोरथ रे।।

आसक लता लगाओल सजनी, नयनक नीर पटाय।
से फल आब परिनत भेल मजनी, आँचर तर न समाय।।
कांच सांच पहु देखि गेल सजनी, तसु मन भेल कुह भान।
दिन-दिन फल परिनत भेल सजनी, अहुनख कर न गेआना।
सबहक पहु परदेस बसु सजनी, आयल सुमिरि सिनेह।
हमर एहन पति निरदय सजनी, नहि मन बाढय नहे।।
भनइ विद्यापति गाओल सजनी, उचित आओत गुन साइ।
उठि बधाव करु मन भरि सजनी, अब आओत घर नाह।।
जौवन रतन अछल दिन चारि।
से देखि आदर कमल मुरारि।।
आवे भेल झाल कुसुम रस छूछ।
बारि बिहून सर केओ नहि पूछ।।
हमर ए विनीत कहब सखि राम।
सुपुरुष नेह अनत नहि होय।।
जावे से धन रह अपना हाथ।
ताबे से आदर कर संग-साथ।।
धनिकक आदर सबतह होय।
निरधन बापुर पूछ नहि कोय।।
भनइ विद्यापति राखब सील।
जओ जग जिबिए नब ओनिधि भील।।
के पतिआ लय जायत रे, मोरा पिअतम पास।
हिय नहि सहय असह दुखरे, भेल माओन मास।।
एकसरि भवन पिआ बिनु रे, मोहि रहलो न जाय।
सखि अनकर दुख दारुन रे, जग के पतिआय।।
मोर मन हरि लय गेल रे, अपनो मन गेल।
गोकुल तेजि मधुपुर बसु रे, कत अपजस लेल।।
विद्यापति कवि गाओल रे, धनि धरु मन मास।
आओत तोर मन भावन रे, एहि कातिक मास।।
चानन भेल विषम सर रे, भुषन भेल भारी।
सपनहुँ नहि हरि आयल रे, गोकुल गिरधारी।।

एकसरि ठाठि कदम-तर रे, पछ हरेधि मुरारी।
हरि बिनु हृदय दगध भेल रे, झामर भेल सारी।।
जाह जाह तोहें उधब हे, तोहें मधुपुर जाहे।
चन्द्र बदनि नहि जीउति रे, बध लागत काह।।
कवि विद्यापति गाओल रे, सुनु गुनमति नारी।
आजु आओत हरि गोकुल रे, पथ चलु झटकारी।।

महाकवि की रचनाएँ

महाकवि विद्यापति ओईनवार राजवंश के अनेक राजाओं के शासनकाल में विराजमान रहकर अपने वैदुश्य एवं दूरदर्शिता सो उनका मार्गदर्शन करते रहे। जिन राजाओं ने महाकवि को अपने यहाँ सम्मान के साथ रखा उनमें प्रमुख है–

(क) देवसिंह,
(ख) कीर्तिसिंह,
(ग) शिवसिंह,
(घ) पद्मसिंह,
(च) नरसिंह,
(छ) धीरसिंह,
(ज) भैरवसिंह और
(झ) चन्द्रसिंह।

इसके अलावे महाकवि को इसी राजवंश की तीन रानियों का भी सलाहकार रहने का सौभाग्य प्राप्त था। ये रानियाँ है–

(क) लखिमादेवी (देई),
(ख) विश्वासदेवी और
(ग) धीरमतिदेवी।

पुरुषपरीक्षा

पुरुषपरीक्षा, विद्यापति द्वारा रचित कथाग्रन्थ है। उन्होंने इसकी रचना महाराजा शिवसिंह के निर्देशन पर किया था। इसमें पंचतन्त्र की परम्परा में शिक्षाप्रद कथाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। यह ग्रन्थ समाजशास्त्रियों, इतिहासकारों, मानववैज्ञानिको, राजनीतिशास्त्रियों के साथ-साथ दर्शन एवं साहित्य के लोगों के लिए भी एक अपूर्व कृति है।

वीरकथा, सुबुद्धिकथा, सुविद्यकथा और पुरुषार्थकथा- इन चार वर्गों में पुरुषपरीक्षा की कथा दी गयी है।

'पुरुष-परीक्षा' में सच्चे पुरुष की परख कैसे की जाये- यह बताने के लिए वासुकि नामक मुनि पारावार नामक राजा को अनेक कथाएँ सुनाते हैं। पुरुष की परीक्षा कैसे होनी चाहिए, इस सम्बन्ध में कवि ने पुरुष-परीक्षा की भूमिका में लिखा है कि-

"चंद्रातपा नाम के नगर में पारावार नाम का एक राजा था। उसकी पद्मावती नाम की एक अत्यंत सुंदरी कन्या थी। कन्या को विवाह योग्य देखकर राजा ने सुबुद्धि नाम के ऋषि से कहा कि महाराज! इष्ट कार्यों में अकेले निर्णय नहीं करना चाहिए। संभव है मोहवश कोई अनुचित कार्य न कर बैठें, क्योंकि मोहवश बड़े-बड़े विद्वान भी अनर्थ कर बैठते हैं, जिससे सुख की हानि होती है। इसलिए हे ऋषि, किस प्रकार का वर अपनी कन्या के लिए खोजूं, यह आप बतावें। तब ऋषि ने कहा- राजन! पुरुष वर करिए। राजा ने आश्चर्य से पूछा कि 'क्यों अपुरुष भी कन्या के लिए वर हो सकते हैं? ऋषि ने कहा 'राजन! इस संसार में बहुत से से पुरुष कहलाने वाले पुरुष के आकर के लोग दिख पड़ते हैं, किन्तु वे सब पुरुष नहीं हैं। इसलिए आप पुरुष को पहचान कर कन्या के लिए वर का निश्चय कीजिये। पुरुष को पहचानने के लिए निम्नलिखित चिह्न हैं- जो पुरुष वीर हो, सुधि हो, विद्वान हो तथा पुरुषार्थ करने वाला हो, वही यथार्थ में पुरुष है। इसके अतिरिक्त पुच्छ-विषाण-हीन पशु है।"

वीरः सुधीः सुविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान्।

तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः।।

वीर, सुबुद्धिमान, विद्यावान और पुरुषार्थ करनेवाला हो, वही (सच्चा) पुरुष है। उसके अलावा अन्य, पुरुष के आकार में बिना पूंछ के पशु हैं।

,

6

मलिक मुहम्मद जायसी की प्रमुख पुस्तकें

महात्मा कबीर दास मुसलमान और हिंदू दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। कबीर काल में जनता 'राम' और 'रहीम' की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों दीन धर्म के लोग आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। ऐसे साधू या फकीर, जोकि भेदभाव से परे थे, लोग उनको हर सम्मान देते थे। काफी दिनों तक एक साथ रहते- रहते मुसलमान एक- दूसरे के सामने अपना- अपना हृदय खोलने लग गए थे। इससे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि लोग मानवता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और करने लगे थे। दोनों एक- दूसरे की कहानियाँ, जैसे हिंदू मुसलमान की दास्तान हमजा और मुसलमान हिंदूओं की रामकहानी को सुनने को तैयार हो गये थे। चारों तरफ मुसलमान नल और दमयंती और हिंदू लैला- मजनूँ की कथा जान चुके थे। कबीर ने ऐसा पाठ पढ़ाया था कि दोनों समुदायों के लोग ईश्वर तक पहुँचने वाला मार्ग ढूँढ़ने की सलाह साथ बैठ कर ही करने लगे थे। एक तरफ आचार्य व महात्मा भाव- प्रेम को सर्वोपरि ठहरा चुके थे और दूसरी तरफ सूफी महात्मा मुसलमानों को 'इश्क हकीकी' का सबक पढ़ाते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों के बीच 'साधुता' का सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था। बहुत से मुसलमान फकीर भी अहिंसा का सिद्धांत स्वीकार करके मांस भक्षण को बुरा कहने लगे थे।

ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियाँ लेकर साहित्य क्षेत्र में काफी आगे तक आए। इन्हीं कवियों और लेखकों में एक मलिक मुहम्मद जायसी भी थे।

संक्षिप्त परिचय

मलिक मुहम्मद जायसी, मलिक वंश के थे। मिस्र में मलिक सेनापति और प्रधानमंत्री को कहते थे। खिलजी राज्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चचा को मारने के लिए बहुत से मलिकों को नियुक्त किया था। इस कारण यह नाम इस काल में काफी प्रचलित हो गया। ईरान में मलिक जमींदार को कहते हैं। मलिक जी के पूर्वज निगलाम देश इरान से आये थे और वहीं से उनके पूर्वजों की पदवी मलिक थी। मलिक मुहम्मद जायसी के वंशज अशरफी खानदान के चेले थे और मलिक कहलाते थे। तारीख फीरोजशाही में है कि बारह हजार रिसालदार को मलिक कहा जाता था।

मलिक मूलत: अरबी भाषा का शब्द है। अरबी में इसके अर्थ स्वामी, राजा, सरदार आदि होते हैं। मलिक का फारसी में अर्थ होता है – 'अमीर और बड़ा व्यापारी'। जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। मलिक इनका पूर्वजों से चला आया 'सरनामा' है। मलिक सरनामा से स्पष्ट होता है कि उनके पूर्वज अरब थे। मलिक के माता- पिता जापान के कचाने मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था, जिनको लोग मलिक राजे अशरफ भी कहा करते थे। इनकी माँ मनिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री थी।

मलिक का जन्म

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म 900 हिजरी (सन् 1492 के लगभग) हुआ माना जाता है। जैसा कि उन्होंने खुद ही कहा है–

या अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस उपर कवि बदी।।

कवि की दूसरी पंक्ति का अर्थ यह है कि वे जन्म से तीस वर्ष पीछे अच्छी कविता कहने लगे। जायसी अपने प्रमुख एवं प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत के निर्माण- काल के संबंध में कहा है–

सन नव सै सत्ताइस अहा।

कथा आरंभ बैन कवि कहा।।

इसका अर्थ यह है कि 'पद्मावत' की कथा के प्रारंभिक वचन कवि ने सन 927 हिजरी (सन् 1520 ई. के लगभग) में कहा था। ग्रंथ प्रारंभ में कवि ने 'शाहे वक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है, जिसके शासनकाल का आरंभ 947 हिजरी अर्थात् सन् 1540 ई. से हुआ था। उपर्युक्त बात से यही पता चलता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य 1540 ई. में बनाए थे, परंतु इस ग्रंथ को शेरशाह के 19 या 20 वर्ष पीछे समय में पूरा किया होगा।

जायसी के जन्म स्थान के विषय में मतभेद है कि जायस ही उनका जन्म स्थान था या वह कहीं और से आकर जायस में बस गए थे। जायसी ने स्वयं ही कहा है–

जायस नगर मोर अस्थानू।
नगर का नवां आदि उदयानू।
तहां देवस दस पहुँचे आएऊँ।,
या बेराग बहुत सुख पाय।।

जायस वालों और स्वयं जायसी के कथानुसार वह जायस के ही रहने वाले थे। **पं. सूर्यकांत शास्त्री** ने लिखा है कि उनका जन्म जायस शहर के 'कंचाना मुहल्लां' में हुआ था। कई विद्वानों ने कहा है कि जायसी गाजीपुर में पैदा हुए थे। मानिकपुर में अपने ननिहाल में जाकर रुके थे।

डॉ. वासदेव अग्रवाल के कथन व शोध के अनुसार–

जायसी ने लिखा है कि जायस नगर में मेरा जन्म स्थान है। मैं वहाँ दस दिनों के लिए पाहुने के रूप में पहुँचा था, पर वहीं मुझे वैराग्य हो गया और सुख मिला।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी का जन्म जायस में नहीं हुआ था, बल्कि वह उनका धर्म-स्थान था और वह वहीं कहीं से आकर रहने लगे थे।

मलिक मुहम्मद जायसी का व्यक्तित्त्व

जैसा कि नाम से मालूम पड़ता है कि मलिक जायसी के रहने वाले थे। जायसी में रहते- रहते वह कुछ दिनों के लिए इधर- उधर भी गए। कुछ दिनों के बाद वह जायस दोबारा वापस आए थे।

जायस के लोगों के अनुसार वह जायस के ही रहने वाले थे। वहाँ के लोग इनका घर का स्थान अब भी दिखाते हैं। अपनी प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत में जायसी ने अपने चार

मित्रों का जिक्र किया है, वह हैं – **युसूफ मलिक, सालार खादिम, सलोनों मियां** और बड़े शेख। ये चारों जायस के ही रहने वाले थे। सलोनों मियां के संबंध में आज तक जायस में यह जनश्रुति चली आ रही है कि वे बहुत बलवान थे।

मलिक कुरूप और काणे थे, कुछ लोगों के अनुसार वह जन्म से ही काणे थे। इस संबंध में अधिकतर लोगों का कहना है कि शीतलता या अर्द्धेग रोग से उनका शरीर विकृत हो गया था। जनश्रुति है कि बालक मुहम्मद पर शीतल का भयंकर प्रकोप हुआ, जिससे माता- पिता को निराशा हुई। माँ ने पाक- साफ दिल से शाहमदार की मनौती की। पीर की दुआ बालक बच गया, किंतु बीमारी के कारण उनकी एक आँख चली गयी। उसी ओर का बायां कान भी नाकाम हो गया। अपने काने होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है–

एक नयन कवि मुहम्मद गुमी।
सोइ बिमोहो जेइ कवि सुनी।।
चांद जइस जग विधि ओतारा।
दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।।
जग सुझा एकह नैनाहां।
उवा सूक अस नखतन्ह मांहां।।
जो लहिं अंबहिं डाभ न होई।
तो लाहि सुगंध बसाई न सोई।।
कीन्ह समुद्र पानि जों खारा।
तो अति भएउ असुझ अपारा।।
जो सुमेरु तिरसूल बिना सा।
भा कंचनगिरि लाग अकासा।।
जौं लहि घरी कलंक न परा।
कांच होई नहिं कंचन करा।।
एक नैन जस दापन, और तेहि निरमल भाऊ।
सब रूपवंत पांव जहि, मुख जोबहिं कै चाउ।।
मुहम्मद कवि जो प्रेम या, ना तन रकत न मांस।
जेइं मुख देखा तइं हंसा, सुना तो आये आंहु।।

उपर्युक्त पंक्तियों से अनुमान होता है कि बाएं कान से भी उन्हें कम सुनाई पड़ता था। एक बार जायसी शेरशाह के दरबार में गए, तो बादशाह ने इसका मुँह देखकर हँस दिया। जायसी ने शांत भाव से पूछा –

मोहि कां इससि कि कोहरहि?
अर्थात् तू मुझ पर हंसा या उस कुम्हार पर,
इस पर शेरशाह ने लज्जित होकर क्षमा माँगी।

जायसी का बचपन

जायसी बाल्यावस्था में ही अनाथ हो गये और साधु- फकीरों के साथ दर- दर भटकते फिरते थे। जायसी ने अपना बचपन के कुछ दिन अपने ननिहाल मानिकपुर में गुजारा। आपको एक साथ कई प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। एक तो आप अनाथ, दीन- हीन अवस्था, दूसरे साधू- फकीरों का संग। इसके साथ इनकी तीव्र बुद्धि और सर्वोपरि सहजात ईश्वरीय प्रेम, इन सभी ने मिलकर आपको अंतर्मुखी और चिंतनशील बना दिया। आपने अपनी सारी शक्ति परम सत्ता की ओर लगा दिया। संयोगवश आपको इसमें कामयाबी भी मिली।

जायसी की विशेषताओं को परख कर **मीर हसन देहलवी** ने लिखा है–

थे मलिक नाम मुहम्मद जायसी।
वह कि पद्मावत जिन्होंने हे सीखी।।
मर्दे आरिफ थे वह और साहब कमाल।
उनका अकबर ने किया दयाफ्त हाल।।
होके मुश्ताक बुलवाया सिताब।
ताकि हो सोहबत से उनकी फेजयाब।।
साफ बातिन थे वह और मस्त- अलमस्त।
लेकिन दुनिया तो है, जाहिर परस्त।।
थे बहुत बद्शकल और वह बदकवी।
देखते ही अकबर उनको हंस पड़ा।।
जो हंसा वह तो उनको देखकर।
यों कहा अकबर को होकर चश्मतर।।
हंस पड़े भारी पर ऐ तु शहरयार।
याकि मेरे पर हंसे अख्तियार।।
कुछ गुनाह मेरा नहीं ऐ बादशाह।
सुर्ख बासन तु हुआ और में स्याह।।

असल में माटी तो है सब एक जात।
अख्तियार उसका हे गो है उसके हाथ।।
सुनते ही यह हर्फ रोया दादगर।
गिर पड़ा उनके कदम पर आनकर।।
अलगराज उनको व एगाजे तमाम।
उनके घर भिजवा दिया फिर वस्सलाम।।
साहबे तासिर हैं, जो ऐ हसन।
दिल पर वारता है असर उनका सुखन।।

जायसी एक किसान

मलिक मुहम्मद जायसी एक गृहस्थ किसान के रूप में ही जायस में रहते थे। वे आरंभ से बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के माने जाते हैं। उनकी यह आदत थी कि जब वह अपने खेतों में होते, तो अपना खाना वहीं मंगा लेते थे। वह अपना खाना अकेले कभी नहीं खाते थे। इस क्रम में जो भी आसपास मिलता, उसे बुलाकर अपने साथ बैठाकर खाना खिलाते थे। एक बार वह अपना खाना लेकर काफी देर तक बैठे रहे और किसी के आने का इंतजार करते रहे। बहुत देर के बाद एक- एक कोढ़ी दूर दिखाई दिया। जायसी ने उसे पास बुलाया और बड़े प्यार से अपने साथ खाने को कहा और दोनों एक ही बरतन में खाना खाने बैठ गए। दूसरे व्यक्ति के शरीर से कोढ़ चू रहा था। उसके शरीर का थोड़ा मवाद उसके खाने में गिर पड़ा। जायसी ने उस अंश को खुद खाने के लिए उठाया, पर उस कोढ़ी ने उसका हाथ थाम लिया और स्वयं खाने को कहा। जायसी को साफ हिस्सा खाने का इशारा किया। जायसी ने झट से उस अंश को खा लिया।

इस घटना का उस कोढ़ी पर बहुत प्रभाव पड़ा और वह जायसी के पीछे हो गया। इस घटना के उपरांत जायसी की मनोवृति ईश्वर की और भी अधिक हो गई। उक्त घटना की ओर संकेत इस प्रकार किया गया है--

बुंढहिं समुद समान, यह अचाज कासों कहो।
जो हेरा सो हैरान, मुहम्मद आपुहि आपु महै।।

जायसी एक सच्चे भक्त थे। वे बड़े ही सच्चरित्र, कर्तव्य- निष्ठ और गुरु भक्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी आस्था आपार थी। उनका विश्वास था कि परम

ज्योति स्वरूप उस जगत के करतार के नियंत्रण में ही समस्त सृष्टि वर्तमान है, गतिमान है। वे महान संत थे। सहजता, सहृदयता, सारग्रहिता, अनयवगम्यीरता, लोक और काव्य का गहन अध्ययन, आडम्बर- हीनता, संयम और पवित्र भक्ति उनके चरित्र के विशेष आकर्षण हैं। इनके हृदय की नम्रता अपार थी। वे अपने विषय में गर्वोक्ति नहीं लिखते। वे स्पष्ट कहते हैं–

हौं सब कविन केर पछिलगा।
किछु कहि चला तबल देई डगा।

उनका कहना है कि मैं सभी कवियों के पीछे चलने वाला हूँ। नन्कारे की ध्वनि हो जाने पर मैं भी आगे वालों के साथ पैर बढ़ाकर कुछ कहने को चल पड़ा हूँ। इस बात को सभी विद्वानों ने साफ कर दिया है कि उनके समस्त काव्य में एक उक्ति भी निज के विषय में गर्व की नहीं है।

जायसी इस्लाम धर्म और पैगम्बर पर पूरी आस्था रखते थे। उन्होंने ईश्वर तक पहुँचने के लिए अनेक मार्गों को स्वत: स्वीकार किया है। इस असंख्य मार्गों में वह मुहम्मद साहब के मार्ग को सरल एवं सुगम कहते थे।

विधिना के मारग हे ते ते।
सरग नखत, तन रोवां जेते।।
तिन्ह मह पंथ कहों भल भाई।
जेहि दूनों जग छाज बढ़ाई।।
सं बड़ पन्थ मुहम्मद केरा।
है निरमल कविलास बसेरा।।

जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे। वे विधि पर आस्था रखनेवाले थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण दैन्य उनमें पूरा- पूरा था। उनकी वह उदारता थी, जिससे कट्टरपन को भी चोट नहीं पहुँच सकती थी। प्रत्येक प्रकार का महत्त्व स्वीकार करने की उनमें क्षमता थी। वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होनेवाला हृदय उन्हें प्राप्त था। वे जो कुछ जानते थे, उसे नम्रतापूर्वक पण्डितों का प्रसाद मानते थे।

जायसी के पुत्र

यह माना जाता है कि जायसी को सात पुत्र थे। ये सातों पुत्र एक साथ

मकान के नीचे दबकर या इस जैसी किसी घटना में मर गए। इस घटना ने जायसी को संसार से और भी विरक्त कर दिया और वह कुछ दिनों में घर बार छोड़कर इधर- उधर फकीर होकर घूमने लगे।

जायसी का विराग

जायसी के विराग का कारण भी कुछ इस प्रकार की घटना ही होगी, जिसने उसे प्रेमानुभव के एक नवीन लोक में पहुँचा दिया, उनके हृदय में विराग का एक स्रोत फूट पड़ा। उनका हृदय किसी अपूर्व ज्योति से उद्‌भासित हो उठा। उसी का रूप नयनों में समा गया। सर्वत्त उसी सौंदर्य और प्रेम सत्ता के दर्शन होने लगे। संसार के मापदंड बदल गए। विषयों से मन हट गया। हृदय में एक ही आकुलता छा गई कि किस प्रकार उसे परम ज्योति या रूप की साक्षात प्राप्ति हो।

जायसी ने अपनी उस वैराग्य- अवस्था का सच्चा वर्णन किया है–'

तहां दवस दस पहुनें आए
भा बेराग बहुत सुख पाएउ।।
सुख भा सोच एक दुख मानो।
ओहि बिनु जिबन मरन के जानों।।
नैन रूप सो गएऊ समाई।
रहा पूरि भरि हिरदे छाई।।
जहवैं देखौं तंहवैं सोई।
आर न आव दिस्ट तर कोई।।
आपुन देखि देखि मन राखौं।
दूसर नाहिं सो कासों भाखों।।
सबै जगत दरपन कर लेखा।
आपनु दर्सन आपुहि देखा।।

उपर्युक्त से यह आशय स्पष्ट होता है कि वैराग्य की तीव्रधारा के स्पर्श से एक बार ही उनका आनंद प्लावित हो गया। प्रियतम का, जो रूप नयनों में समा गया था, वहीं भीतर और बाहर का आनंद था और यही मिलन की वेदना का कारण बना। सचमुच वैराग्य के अनंतर जायसी को महान आत्मिक सुख मिला होगा। उन्होंने परमात्म- तत्त्व के दर्शन अवश्य किए थे। उसे उन्होंने विश्व के कण- कण में देखा और अनुभव किया था।

जायसी के मित्र

जासयी के चार मित्र थे। उन्होंने अपने चारों मित्र का उल्लेख बड़े ही उल्लासित कंठ से किया है। पद्मावत के आरंभ में ही जायसी ने इन चारों की प्रशस्ति की है–

चारि मीत कवि मुहमद पाए।
जोरि मिताई सरि पहुचाए।।
युसूफ मलिक पण्डित और ज्ञानी।
पहिलैं भेद बात उन्हें जानी।।
पुनि सालार कांदर मतिमांह।
खांडे दान उभे निति वाहां।।
मियां सलोने सिंध अपारु।
बीर खेत रन खरग जुझारु।।
सेख बड़े बड़ सिद्ध बखाने।
कई अदेस सिद्धन बड़ माने।।
चारिऊ चतुर दसौ गुन पढ़े।
औं संग जौग गोसाई गढ़े।।
विरिख जो आछहिं चंदन पासां।
चंदन सोहि बंघि तेहि बांसा।।
मुहमद चारिउ मीत मिलि, भए जो एकइ चित्त।
एहि जग साथ निबाहा, ओहि जग बिछुस कित्त।।

जायसी के चार मित्रों में से दो यूसुफ मलिक पट्टी कंचाना के रहने वाले थे। सालार खादिम सालार पट्टी के रहने वाले थे। सालार खादिम शहंशा के वक्त तक जीवित रहे। ये अत्यंत बुद्धिमान, तलवार के धनी, जमींदार और दानी भी थे। ये सभी मित्र बड़े ही सिद्ध पुरुष थे।

जायसी की काव्य रचना

साहित्यिक विद्वानों तथा अनेकों शोधकर्ताओं के साक्ष्या की बुनियाद पर जायसी की निम्नलिखित काव्य रचनाएँ हैं–

1. पद्मावत,
2. अखरावट,

3. सखरावत,
4. चंपावत,
5. इतरावत,
6. मटकावत,
7. चित्रवत,
8. सुर्वानामा,
9. मोराईनामा,
10. मुकहरानामा,
11. मुखरानामा,
12. पोस्तीनामा,
13. होलीनामा,
14. आखिरी कलाम,,
15. धनावत,
16. सोरठ,
17. जपजी,
18. मैनावत,
19. मेखरावटनामा,
20. कहारनामा,
21. स्फुट कवितायें,
22. लहतावत,
23. सकरानामा,
24. मसला या मसलानामा।

कहरानामा में आले मुहम्मद की सूची दी गई है। कहा जाता है कि पास्तीनामा अपने गुरु के अमल पर व्यंग करते हुए लिखा था। जब जायसी ने यह कृति पूरी की, तो इसे अपने गुरु के सामने प्रस्तुत किया, इनके गुरु बहुत नाराज हुए। उन्होंने नाराज होकर जायसी को शाप दे डाला कि तुम्हारे सातों बच्चे छत गिरने से मर जायेंगे। इसी शाप के कारण इनके सातों बच्चे प्राणांत कर गए। इसके साथ ही गुरु ने यह भी कहा था कि जायसी तुम्हारा नाम तुम्हारे चौदह ग्रंथों के द्वारा जिंदा रहेगा। अंत में यह सब वैसा ही हुआ।

मुसलमानी धर्म के विविध अंगों पर काव्य लिखने की परंपरा जायसी ने ही आरंभ की थी, जो बाद तक चली आ रही है। 'आखिरी कलाम' में जायसी ने कयामत के दिन का चित्रण काफी सुंदरता से किया है।

जायसी प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

अखरावट जायसी कृत एक सिद्धांत प्रधान ग्रंथ है। इस काव्य में कुल 54 दोहे 54 सोरठे और 317 अर्द्धलिया हैं। इसमें दोहा, चौपाई और सोरठा छंदों का प्रयोग हुआ है। एक दोहा पुनः एक सोरठा और पुनः 7 अर्द्धलियों के क्रम का निर्वाह अंत तक किया गया है। अखरावट में मूलतः चेला गुरु संवाद को स्थान दिया गया है।

अखरावट का रचनाकाल

अखरावट के विषय में जायसी ने इसके काल का वर्णन कहीं नहीं किया है। सैय्यद कल्ब मुस्तफा के अनुसार यह जायसी की अंतिम रचना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अखरावट पद्मावत के बाद लिखी गई होगी, क्योंकि जायसी के अंतिम दिनों में उनकी भाषा ज्यादा सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित हो गई थी, इस रचना की भाषा ज्यादा व्यवस्थित है। इसी में जायसी ने अपनी वैयक्तिक भावनाओं का स्पष्टीकरण किया है। इससे भी यही साबित होता है, क्योंकि कवि प्रायः अपनी व्यक्तित्त्व भावनाओं स्पष्टीकरण अंतिम में ही करता है।

मनेर शरीफ से प्राप्त पद्मावत के साथ अखरखट की कई हस्तलिखित प्रतियों में इसका रचना काल दिया है। 'अखरावट' की हस्तलिखित प्रति पुष्पिका में जुम्मा 8 जुल्काद 911 हिजरी का उल्लेख मिलता है। इससे अखरावट का रचनाकाल 911 हिजरी या उसके आस पास प्रमाणित होता है।

अखरावट का कथावस्तु

1. सृष्टि

अखरावट के आरंभ में जायसी ने इस्लामिक धर्मग्रंथों और विश्वासों के आधार पर आधारित सृष्टि के उद्भव तथा विकास की कथा लिखी है। उनके इस कथा के अनुसार सृष्टि के आदि में महाशून्य था, उसी शून्य से ईश्वर ने

सृष्टि की रचना की गई हे। उस समय गगन, धरती, सूर्य, चंद्र जैसी कोई भी चीज मौजूद नहीं थी। ऐसे शून्य अंधकार में सबसे पहले पैगम्बर मुहम्मद की ज्योति उत्पन्न की–

गगन हुता नहिं महि दुती, हुते चंद्र नहिं सूर
ऐसइ अंधकूप महं स्पत मुहम्मद नूर।।

कुरान शरीफ एवं इस्लामी रवायतों में यह कहा जाता है कि जब कुछ नहीं था, तो केवल अल्लाह था। प्रत्येक जगह घोर अंधकार था। भारतीय साहित्य में भी इस संसार की कल्पना 'अश्वत्थ' रूप में की गई है।

सातवां सोम कपार महं कहा जो दसवं दुवार।
जो वह पवंकिरं उधारै, सो बड़ सिद्ध अपार।।

इस पंक्तियों में जायसी ने मनुष्य शरीर के परे, गुद्येन्द्रिय, नाभि, स्तन, कंठ, भौंहों के बीच के स्थान और कपाल प्रदेशों में क्रमशः शनि, वृहस्पिति, मंगल, आदित्य, शुक्र, बुध और सोम की स्थिति का निरोपण किया है। ब्रह्म अपने व्यापक रूप में मानव देह में भी समाया हुआ है–

माथ सरग घर धरती भयऊ।
मिलि तिन्ह जग दूसर होई गयऊ।।
माटी मांसु रकत या नीरु।
नसे नदी, हिय समुद्र गंभीरु।।

इस्लामी धर्म के तीर्थ आदि का भी कवि ने शरीर में ही प्रदर्शित किया है–

सातौं दीप, नवौ खंड आठो दिशा जो आहिं।
जो ब्राह्मड सो पिंड है हेरत अंत न जाहिं।।
अगि, बाड, धुरि, चारि मरइ भांड़ा गठा।
आपु रहा भरि पूरि, मुहमद आपुहिं आपु महं।।

कवि के अनुसार शरीर को ही जग मानना चाहिए। धरती और आकाश इसी में उपस्थित है। मस्तक, मक्का तथा हृदय मदीना है, जिसमें नवी या पैगम्बर का नाम सदा रहता है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं को भी इसी प्रकार निर्देशित किया गया–

नाकि कंवल तर नारद लिए पांच कोतवार।
नवो दुवारि फिरै निति दसई कारखवार।।

अर्थात्, नाभि कमल के पास कोतवाल के रूप में शैतान का पहरा है।

जीव ब्रह्म

मलिक मुहम्मद जायसी के कथनानुसार ब्रह्म से ही यह समस्त सृष्टि आपूर्ति की गयी है। उन्होंने आगे फरमाया कि जीव बीज रूप में ब्रह्म में ही था, इसी से अठारह सहस्र जीवयोगियों की उत्पत्ति हुई है –

वै सब किछु करता किछु नाहीं।
जैसे चलै मेघ परिछाही।।
परगट गुपुत विचारि सो बूझा।
सो तजि दूसर और न सूफा।।

जीव पहले ईश्वर में अभिन्न था। बाद में उसका बिछोह हो गया। ईश्वर का कुछ अंश घट- घट में समाया है –

सोई अंस छटे घट मेला।
जो सोइ बरन- बरन होइ खेला।।

जायसी बड़ी तत्परता से कहते हैं कि संपूर्ण जगत ईश्वर की ही प्रभुता का विकास है। कवि कहता है कि मनुष्य पिंड के भीतर ही ब्रह्मा और समस्त ब्रह्माण्ड है, जब अपने भीतर ही ढूँढ़ा तो वह उसी अनंत सत्ता में विलीन हो गया–

बुंदहिं समुद्र समान, यह अचरज कासों कहों।
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आप महं।।

इससे आगे कवि कहता है कि 'जैसे दूध में घी और समुद्र में पोती की स्थिति है, वही स्थिति वह परम ज्योति की है, जो जगत भीतर- भीतर भासित हो रही है। कवि कहता है कि वस्तुत: एक ही ब्रह्म के चित अचित् दो पक्ष हुए, दोनों पक्षों के भीतर तेरी अलग सत्ता कहाँ से आई। आज के सामाजिक परिदृश्य में उनका यह प्रश्न अधिक उचित है–

एक हि ते हुए होइ, दुइ सौ राज न चलि सके।
बीचतें आपुहि खोइ, मुहम्मद एकै होइ रहु।।

साधना

'प्रेम- प्रभु' की साधना ही सूफी साधना है। इसके अन्तर्गत साधक अपने भीतर बिछुड़े हुए प्रियतम के प्रति प्रेम की पीर को जगाता है। पहले जीव- ब्रह्मा

एक थे। वह पुनः अपने बिछुड़े हुए प्रियतम से मिलकर अभेदता का आनंद पाना चाहता है।

हुआ तो एक ही संग, हम तुम काहे बिछुड़े।
अब जिउ उठै तरंग, महमद कहा न जाईन किछु।।

कबीर की तरह जायसी भी प्रेम को अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण बताते हुए कहते हैं–

परै प्रेम के झेल, पिउ सहुँ धनि मुख सो करे।
जो सिर संती खेल, मुहम्मद खेल हो प्रेम रस।।

जायसी के कथनानुसार किसी सिद्धांत विशेष का यह कहना कि ईश्वर ऐसा ही है, भ्रम है–

सुनि हस्ती का नाव अंधरन रोवा धाइ के।
जेइ रोवा जेइ ठांव मुहम्मद सो तेसे कहे।।

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मत में सत्य का कुछ- न- कुछ अंश रहता है।

जायसी भी मुहम्मद के मार्ग को श्रेष्ठ मानते हुए भी विधना के अनेक मार्गों को स्वीकार करते हैं। वह अपने लेखन में या साधना में एक सिद्धांत में बंधना नहीं चाहते हैं। जायसी अपनी उदास और सारग्रहिणी बुद्धि के फलस्वरूप योग, उपनिषद्, अद्वैतवाद, भक्ति, इस्लामी, एकेश्वरवाद आदि से बहुत कुछ सीखते हैं। वे कहते हैं कि वह सभी तत्त्व जो ग्राम्ह है, प्रेम की पीर जगाने में समर्थ हैं। ब्रह्मावाद, योग और इस्लामी- सूफी सिद्धांतों का समन्वय जायसी की अपनी विशेषता है। अखरावट में वह कहते हैं–

मा- मन मथन करै तन खीरु।
हुहे सोइ जो आपु अहिरु।।
पाँचों भुत आनमहि मारैं।
गरग दरब करसी के जारे।।
मन माठा- सम अस के धोवै।
तन खेला तेहि माहं बिलोबे।।
जपहु बुद्धि के दुइ सन फरेहु।
दही चूर अस हिंया अभेरहु।।
पछवां कदुई केसन्ह फेरहु।
ओहि जोति महं जोति अभेरहु।।

जस अन्तपट साढ़ी फूटे।
निरमल होइ मयां सब टूटे।।
मखनमूल उठे लेइ जोति।
समुद माहं जस उलटे कोती।।
जस घिड़ होइ मराइ के, तस जिऊ निरमल होइ।
महै महेरा दूरि करि, भोग कर सुख सोइ।।

अद्वैतवाद के आधार पर ही जायसी मूल्यत: अपने अध्यात्म जगत का निर्माण किया है–

अस वह निरमल धरति अकासा।
जैसे मिली फूल महं बरसा।।
सबै ठांव ओस सब परकारा।
ना वह मिला, न रहै निनारा।।
ओहि जोति परछाहीं, नवो खण्ड उजियार।
सुरुज चाँद कै जोती, उदित अहै संसार।।

अखरावट में जायसी ने उदारतापूर्वक इस्लामी भावनाओं के साथ भारतीय हिंदू भावनाओं के सामंजस्य का प्रयत्न किया है। जायसी इस्लाम पर पूर्ण आस्था रखते थे, किंतु उनकी यह इस्लाम भावना सुफी मत की नवीन व्यवस्थाओं से संबंधित है। उनका इस्लाम योगमत योगाचार- विधानों से मण्डित है और हिंदू-मुस्लिम दोनों एक ब्रह्मा की संतान हैं, की भावना से अलंकृत है। ब्रह्मा विष्णु और महेश के उल्लेख 'प्रसंग वश' 'अल्लिफ एक अल्लाह बड़ मोइ' केवल एक स्थान पर अल्लाह का नामोल्लेख, कुरान के लिए कुरान और पुराण के नामोल्लेख, स्वर्ग या बिहिश्त के लिए सर्वत्र कैलाश या कविलास के प्रयोग अहं ब्राह्मास्मि या अनलहक के लिए सांह का प्रयोग, इब्लीस या शैतान के स्थान पर 'नारद' का उल्लेख योग साधना के विविध वर्णन प्रभृति बातें इस बात की ओर इंगित करती है कि जायसी हिंदू- मुस्लिम भावनाओं में एकत्व को दृष्टि में रखते हुए समन्वय एवं सामंजस्य का प्रयत्न करते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने हिंदू-मुस्लिम की एकता के विषय में अत्यंत नम्रंतापूर्वक कहा–

तिन्ह संतति उपराजा भांतिन्ह भांति कुलीन।
हिंदू तुरुक दुवौ भए, अपने अपने दीन।।
मातु कै रक्त पिता के बिंदू।

उपने दुवौ तुरुक और हिंदू।।

जायसी की यह सामंजस्य भावना उनके उदार मानवतावादी दृष्टिकोण की परिचायक है।

आखिरी कलाम

जायसी रचित महान ग्रंथ का सर्वप्रथम प्रकाशन फारसी लिपि में हुआ था। इस काव्य में जायसी ने मसनवी- शैली के अनुसार ईश्वर-स्तुति की है। अपने अवतार ग्रहण करने तथा भुकंप एवं सूर्य- ग्रहण का भी उल्लेख किया है। इस के अलावा उन्होंने मुहम्मद स्तुति, शाहतरत- बादशाह की प्रशस्ति और सैय्यद अशरफ की वंदना, जायस नगर का परिचय बड़ी सुंदरता से उल्लेख किया है। जैसा कि जायसी ने अपने काव्य अखरखट में संसार की सृष्टि के विषय में लिखा था। इस आखिरी काव्य में जायसी ने आखिरी कलाम नाम के अनुसार संसार के खत्म होने एवं पुनः सारे मानवों को जगाकर उसे अपना दर्शन कराने एवं जन्नत की भोग विलास के सूपुर्द करने का उल्लेख किया है।

चित्ररेखा

जायसी ने पद्मावत की ही भांति 'चित्ररेखा' का आरंभ भी संसार के सृजनकर्ता की वंदना के साथ किया है। इसमें जायसी ने सृष्टि की उद्भव की कहानी कहते हुए करतार की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। इसके अलावा इसमें उन्होंने पैगम्बर मुहम्मद साहब और उनके चार मित्रों का वर्णन सुंदरता के साथ किया है। इस प्रशंसा के बाद जायसी ने इस काव्य की असल कथा आरंभ किया है।

इसकी कथा चंद्रपुर नामक एक अत्यंत सुंदर नगर के राजा, जिनका नाम चंद्रभानु था, की कथा से प्रारंभ किया है। इसमें राजा चंद्र भानु की चाँद के समान अवतरित हुई पुत्री चित्ररेखा की सुंदरता एवं उसकी शादी को इस प्रकार बयान किया है–

चंद्रपुर की राजमंदिरों में 700 रानियाँ थी। उनमें रूपरेखा अधिक लावण्यमयी थी। उसके गर्भ से बालिका का जन्म हुआ। ज्योतिष और गणक ने उसका नाम चित्ररेखा रखा तथा कहा कि इसका जन्म चंद्रपुर में हुआ है, किंतु यह कन्नौज की रानी बनेगी। धीरे- धीरे वह चाँद की कली के समान बढ़ती

ही गयी। जब वह स्यानी हो गयी, तो राजा चंद्रभानु ने वर खोजने के लिए अपने दूत भेजे। वे ढूंढ़ते- ढूंढ़ते सिंहल देश के राजा सिंघनदेव के यहाँ पहुँचे और उसके कुबड़े बेटे से संबंध तय कर दिया।

कन्नौज के राजा कल्याणसिंह के पास अपार दौलत, जन व पदाति, हस्ति आदि सेनाएँ थी। तमाम संपन्नता के बावजूद उसके पास एक पुत्र नहीं था। घोर तपस्या एवं तप के पश्चात् उनकी एक राजकुमार पैदा हुआ, जिसका नाम प्रीतम कुँवर रखा गया। ज्योतिषियों ने कहा कि यह भाग्यवान अल्पायु है। इसकी आयु केवल बीस वर्ष की है। जब उसे पता चला कि उसकी उम्र सिर्फ ढाई दिन ही रह गई है, तो उन्होंने पूरा राजपाट छोड़ दिया और काशी में अंत गति लेने के लिए चल पड़ा।

रास्ते में राजकुमार को राजा सिंघलदेव से भेंट हो गयी। राजा सिंघलदेव ने राजकुमार प्रीतम कुँवर के पैर पकड़ लिए। उसकी पुरी और नाम पूछा तथा विनती की, कि हम इस नगर में ब्याहने आए हैं। हमारा वर कुबड़ा है, तुम आज रात ब्याह कराकर चले जाना और इस प्रकार चित्ररेखा का ब्याह, प्रीतम सिंह से हो जाता है। प्रीतम सिंह को व्यास के कहने से नया जीवन मिलता है।

चित्ररेखा में प्रेम की सर्वोच्चता

जायसी प्रेम पंथ के महान साधक- संत थे। प्रेम पंथ में उन्होंने प्रेम पीर की महत्ता का प्रतिपादन किया है। व्यर्थ की तपस्या काम- क्लेश एवं बाह्याडम्बर को वह महत्त्वहीन मानते थे–

का भा पागट क्या पखारे।
का भा भगति भुइं सिर मारें।।
का भा जटा भभूत चढ़ाए।
का भा गेरु कापरि जाए।।
का भा भेस दिगम्बर छांटे।
का भा आयु उलटि गए कांटे।।
जो भेखहि तजि तु गहा।
ना बग रहें भगत व चहा।।
पानिहिं रहइं मंछि औदादुर।
टागे नितहिं रहहिं फुनि गादुर।।

पसु पंछी नांगे सब खरे।
भसम कुम्हार रहइं नित भरे।।
बर पीपर सिर जटा न थोरे।
अइस भेस की पावसि भोऐ।।
जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ प्रेम।
तब लगि हाथ न आव पत- काम- धरम- सत नेम।।

जायसी अपने समय के कृच्छ- काय- क्लेश और नाना विध बाह्माडम्बर को साक्ष्य करते हुए कहते हैं कि प्रकट भाव से काया प्रक्षालन से कोई फायदा नहीं हो सकता है। धरती पर सिर पटकने वाली साधना व्यर्थ है। जटा और भभूत बढ़ाने चढ़ाने का कोई मूल्य नहीं है। गैरिक वसन धारण करने से कुछ नहीं होता है। दिगम्बर योगियों का सा रहना भी बेकार है। काँटे पर उत्तान सोना और साधक होने का स्वांग भरना निष्प्रयोजन है। देश त्याग कर मौन व्रती होना भी व्यर्थ है। इस प्रकार के योगी की तुलना वह बगुला और चमगादड़ से करते हैं। वे कहते हैं केश- वेश से ईश्वर कदापि नहीं मिलता है। जब तक विरह नहीं होता, हृदय में प्रेम की निष्पति नहीं हो सकती है। बिना प्रेम के तप, कर्म, धर्म और सतनेम की सच्चे अर्थों में प्राप्ति नहीं हो सकती है। जायसी सहजप्रेम विरह की साधना को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

कहरानामा

कहरानामा का रचना काल 947 हिजरी बताया गया है। यह काव्य ग्रंथ कहरवा या कहार गीत उत्तर प्रदेश की एक लोक- गीत पर आधारित में कवि ने कहरानाम के द्वारा संसार से डोली जाने की बात की है।

या भिनुसारा चलै कहारा होतहि पाछिल पहारे।
सबद सुनावा सखियन्ह माना, हंस के बोला मारा रे।।

जायसी ने हिंदी में कहारा लोक धुनि के आधार पर इस ग्रंथ की रचना करके स्वयं को गाँव के लोक जीवन एवं सामाजिक सौहार्द्र बनाने का प्रयत्न किया है। कहरानामा में कहरा का अर्थ कहर, कष्ट, दुख या कहा और गीत विशेष है। हमारे देश भारत ब्रह्मा का गुणगान करना, आत्मा और परमात्मा के प्रेम परक गीत गाना की अत्यंत प्राचीन लोक परंपरा है।

कहरानामा की कथा

'कहरानामा' तीस पदों की एक प्रेम कथा है। इस कथानुमा काव्य में लेखक जायसी के कथानुसार संसार एक सागर के समान है। इसमें धर्म की नौका पड़ी हुई है। इस नौका का केवट एक ही है। वे कहते हैं कि कोई पंथ को तलवार की धार कहता है, तो कोई सूत कहता है। कई लोग इस सागर में तैरते हुए हार गया है और बीच में खड़ा है, कोई मध्य सागर में डूबता है और सीप ले आता है, कोई टकटोर करके छूंछे ही लौटता है, कोई हाथ- छोड़ कर पछताता है। जायसी बड़े ही अच्छे अंदाज में दुनिया की बेवफाई और संसार के लोगों की बेरुखी को जगजाहिर करते हैं–

जो नाव पर चढ़ता है, वह पार उतरता है और नख चले जाने पर, जो बांह उठाकर पुकारता है और केवट लौटता नहीं, तो वह पछताता है, ऐसे लोगों को 'मुखे अनाड़ी' कहते हैं। बहुत दूर जाना है, रोने पर कौन सुनता है। जो गाँट पूरे हैं, जो दानी हैं, उनसे हाथ पकड़ कर केवट नाव पर चढ़ा लेता है, वहाँ कोई भाई, बंधु और सुंघाती नहीं। जायसी कहते हैं कि साधक को इस संसार में परे संभाल कर रखना चाहिए अन्यथा पथभ्रष्ठ होने का भय है। जायसी ने योग युक्ति, मन की चंचलता को दूर करने भोगों से दूर रहने और प्रेम प्रभु में मन रमाने की बातें कहीं हैं। इससे आगे वे कहते हैं, ईश्वर जिसे अपना सेवक समझता है, उसे वह भिखारी बना देता है।

जो सेवक आपून के जानी
तेहि धरि भीख मंगावे रे।
कबिता पंडित दूक्ख- दाद महं,
मुरुख के राज करावै रे।।
चनदन गहां नाग हैं तहवां।
जदां फूल तहां कंटा रे।।
मधू जहवां है माखी तहवा,
गुर जहवा तहं चांटा रे।।

केहरानामा में कहारों के जीवन और वैवाहिक वातावरण के माध्यम से कवि ने अपने आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त किया है–

या भिनुसारा चलै कंहारा, होता हि पाछिल पहरारे
सखी जी गवहि हुडुक बाजाहिं हंसि के बोला मंहा रे।।

हुडुक तबर को झांझ मंजीरा, बांसुरि महुआ बाज रे।
सेबद सुनावा सखिन्ह गावा, घर- घर महरीं साजै रे।
पुजा पानि दुलहिन आनी, चुलह भा असबारा रे।।
बागन बाजे केवट साजै
या बसंत संसारा रे।
मंगल चारा होइझंकारा
औ संग सेन सेहली रे।
जनु फुलवारी फुलीवारी
जिनकर नहिं रस केली रे।।
सेंदूर ले- ले मारहिं धै- धै
राति मांति सुभ डोली रे।
भा सुभ मेंसु फुला टेसू,
जनहु फाग होइ होरी रे।।
कहै मुहम्मद जे दिन अनंदा,
सो दिन आगे आवे रे।
है आगे नग रेनि सबहि जग,
दिनहि सोहाग को पखे रे।

मसला

यह जायसी एक काव्य रचना है। इसके आरंभ में जायसी ने अल्लाह से मन लगाने की बात कही है–

यह तन अल्लाह मियां सो लाई।
जिहि की शाई तिहि की गाई।।
बुधि विद्या के कटक मो हों मन का विस्तार।
जेहि घर सासु तरुणि हे, बहुअन कौन सिंगार।।

जायसी कहते हैं, अगर जीवन को निष्प्रेम भाव से जीवन- निर्वाह किया जाए, तो वह व्यर्थ है, जिस हृदय में प्रेम नहीं, वहाँ ईश्वर का वास नहीं हो सकता है। भला सुने गांव में कोई आता है–

बिना प्रेम जो जीवन निबाहा।
सुने गाऊँ में आवै काहा।।

पद्मावत

जायसी हिंदी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। उनकी रचना का महानकाव्य पद्मावत हिंदी भाषा के प्रबंध काव्यों में शब्द अर्थ और अलंकृत तीनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। इस कृति में श्रेष्टतम प्रबंध काव्यों के सभी गुण प्राप्त हैं। धार्मिक स्थलों की बहुलता, उदात्त लौकिक और ऐतिहासिक कथा वस्तु- भाषा की अत्यंत विलक्षण शक्ति, जीवन के गंभीर सर्वागिंण अनुभव, सशक्त दार्शनिक चिंतन आदि इसकी अनेक विशेषताएँ हैं। सचमुच पद्मावत हिंदी साहित्य का एक जगमगाता हुआ हीरा है। अवधी भाषा के इस उत्तम काव्य में मानव- जीवन के चिरंतन सत्य प्रेम- तत्त्व की उत्कृष्ट कल्पना है। कवि से शब्दों में इस प्रेम कथा का मर्म है। गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई। रत्नसेन और पद्मावती दोनों के जीवन का अंतर्यामी सूत्र है। प्रेम- तत्त्व की दृष्टि से पद्मावत का जितना भी अध्ययन किया जाए, कम है। संसार के उत्कृष्ट महाकाव्यों में इसकी गिनती होने योग्य है। पद्मावत में सूफी और भारतीय सिद्धांतों का समन्वय का सहारा लेकर प्रेम पीर की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की गई है।

पद्मावत का रचनाकाल

मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत के रचनाकाल का उल्लेख करते हुए लिखा है–

सन नौ से सैतांलिस अहे।
कथा आरंभ बेन कवि कहै।।

इस काल में दिल्ली की गद्दी पर शेरशाह बैठ चुका था। जायसी ने शाह तत्त्वत के रूप में दिल्ली के सुल्तान शेरशाह के वैभव को अत्यंत वैभववंत उल्लेख किया है–

सेरसादि दिल्ली सुल्तानू।
चरिऊ खण्ड तपइ जसभानू।।

कुलश्रेष्ट जी ने 927 हिजरी को इस महानकाल का रचनाकाल माना है। उनका कहना था, इस समय जायसी का पद्मावत अधुरा पड़ा था, उन्होंने इसी समय पूरा किया और इसे 936 तक पूरा कर लिया था।

पद्मावत की लिपि

कुछ विद्वान इसे निश्चित रूप में फारसी लिपि में लिखी मानते हैं। कुछ भागराक्षरों में और कुछ विद्वान केथी अक्षरों में लिखा मानते हैं।

डॉ. ग्रियसन ने लिखा है कि मूलत: पद्मावत फारसी अक्षरों में लिखा गया और इसका कारण जायसी का धर्म था। हिंदी लिपि में उन्हें पीछे से लोगों ने उतारा है।

एक विद्वान ने बताया है कि जासयी की पद्मावत नागरी अक्षरों में लिखी गई थी। इनका मत यह है कि जायसी के समय में उर्दू का नाम नहीं था और हिंदी भाषा को लिखने के लिए फारसी अक्षरों में आवश्यक विचार भी नहीं हुए थे। अत: जासयी ने अपनी रचना के लिए उर्दू लिपि का चयन कदापि नहीं किया था। इसका कारण यह है कि उस काल में ऐसे अक्षर वर्तमान नहीं थे।

एक मत यह भी है कि जायसी का उद्देश्य हिंदू जनता में सूफी मत का प्रचार करना था, इसलिए उन्होंने स्वभवत: नागरी लिपि में लिखा होगा।

उपर्युक्त विवरण से यह माना जा सकता है कि पद्मावत की रचना नागरी लिपि में हुई थी। इसी लिपि में जायसी, जनता व साधारण जनता के सामने मकबूल थे। इसलिए उन्होंने इस लिपि को अपने सूफी मत के प्रचार के लिए चुना होगा।

पद्मावत की भाषा पूरब की हिंदी है।

पद्मावत की कथा

जायसी ने कल्पना के साथ- साथ इतिहास की सहायता से अपने पद्मावत की कथा का निर्माण किया है।

भारतवर्ष के सूफी कवियों ने लोकजीवन तथा साहित्य में प्रचलित निजंधरी कथाओं के माध्यम से अपने आध्यात्मिक संदेशों को जनता तक पहुँचाने के प्रयत्न किए हैं। पद्मावती की कहानी जायसी की अपनी निजी कल्पना न होकर पहले से प्रचलित कथा के अर्थ को उन्होंने नये सिरे से स्पष्ट किया है–

सन् नरे सौ तृतालिस अहा।
कथा आरंभ बैन कवि कहा।।
सिंहलद्वीप पद्मिनी रानी।
रतनसेन चितउर गढ़ आनी।।

अलाउद्दीन देहली सुल्तानू।
राघव चेतन कीन्ह बखानू।।
सुना साहि गढ़ छेंकन आई।
हिंदू तुरकन्ह भई लराई।।
आदि अंत जस गाथा अहै।
लिखि भासा चौपाई कहै।।

इस पंक्तियों में जायसी स्वयं बताते हैं कि आदि से अंत तक जैसी गाथा है, उसे ही वे भाखा चौपाई में निबंद्ध करके प्रस्तुत कर रहे हैं। जायसी का दावा है कि पद्मावती की कथा रसपूर्ण तथा अत्यंत प्राचीन थी–

कवि वियास कंवला रसपूरी।
दूरि सो निया नियर सो दूरी।।
नियरे दूर फूल जस कांटा।
दूरि सो नियारे जस गुरु चांटा।।
भंवर आई बन खण्ड सन लई कंवल के बास।
दादूर बास न पावई भलहि जो आछै पास।।

कवि इस पंक्ति के द्वारा बताना चाहता है कि यहाँ एक- से- एक बढ़कर कवि हुए हैं और यह कथा भी रस से भरी पड़ी है।

जायसी सूफी संत थे और इस रचना में उन्होंने नायक रतनसेन और नायिका पद्मिनी की प्रेमकथा को विस्तारपूर्वक कहते हुए प्रेम की साधना का संदेश दिया है। रतनसेन ऐतिहासिक व्यक्ति है, वह चित्तौड़ का राजा है, पद्मावती उसकी वह रानी है जिसके सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन उसे प्राप्त करने के लिये चित्तौड़ पर आक्रमण करता है और यद्यपि युद्ध में विजय प्राप्त करता है तथापि पद्मावती के जल मरने के कारण उसे नहीं प्राप्त कर पाता है। इसी अर्ध ऐतिहासिक कथा के पूर्व रतनसेन द्वारा पद्मावती के प्राप्त किए जाने की व्यवस्था जोड़ी गई है, जिसका आधार अवधी क्षेत्र में प्रचलित हीरामन सुग्गे की एक लोककथा है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है–

हीरामन की कथा

सिंहल द्वीप (श्रीलंका) का राजा गंधर्वसेन था, जिसकी कन्या पद्मावती थी, जो पद्मिनी थी। उसने एक सुग्गा पाल रखा था, जिसका नाम हीरामन था।

एक दिन पद्मावती की अनुपस्थिति में बिल्ली के आक्रमण से बचकर वह सुग्गा भाग निकला और एक बहेलिए के द्वारा फँसा लिया गया। उस बहेलिए से उसे एक ब्राह्मण ने मोल ले लिया, जिसने चित्तौड़ आकर उसे वहाँ के राजा रतनसिंह राजपूत के हाथ बेच दिया। इसी सुग्गे से राजा ने पद्मिनी (पद्मावती) के अद्भुत सौंदर्य का वर्णन सुना, तो उसे प्राप्त करने के लिये योगी बनकर निकल पड़ा।

अनेक वनों और समुद्रों को पार करके वह सिंहल पहुँचा। उसके साथ में वह सुग्गा भी था। सुग्गे के द्वारा उसने पद्मावती के पास अपना प्रेमसंदेश भेजा। पद्मावती जब उससे मिलने के लिये एक देवालय में आई, उसको देखकर वह मूर्छित हो गया और पद्मावती उसको अचेत छोड़कर चली गई। चेत में आने पर रतनसेन बहुत दु:खी हुआ। जाते समय पद्मावती ने उसके हृदय पर चंदन से यह लिख दिया था कि उसे वह तब पा सकेगा जब वह सात आकाशों (जैसे ऊँचे) सिंहलगढ़ पर चढ़कर आएगा। अत: उसने सुग्गे के बताए हुए गुप्त मार्ग से सिंहलगढ़ के भीतर प्रवेश किया। राजा को जब यह सूचना मिली तो उसने रतनसेन को शूली देने का आदेश दिया किंतु जब हीरामन से रतनसिंह राजपूत के बारे में उसे यथार्थ तथ्य ज्ञात हुआ, उसने पद्मावती का विवाह उसके साथ कर दिया।

रतनसिंह राजपूत पहले से ही विवाहित था और उसकी उस विवाहिता रानी का नाम नागमती था। रतनसेन के विरह में उसने बारह महीने कष्ट झेल कर किसी प्रकार एक पक्षी के द्वारा अपनी विरहगाथा रतनसिंह राजपूत के पास भिजवाई और इस विरहगाथा से द्रवित होकर रतनसिंह पद्मावती को लेकर चित्तौड़ लौट आया।

यहाँ, उसकी सभा में राघव नाम का एक तांत्रिक था, जो असत्य भाषण के कारण रतनसिंह द्वारा निष्कासित होकर तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन की सेवा में जा पहुँचा और जिसने उससे पद्मावती के सौंदर्य की बड़ी प्रशंसा की। अलाउद्दीन पद्मावती के अद्भुत सौंदर्य का वर्णन सुनकर उसको प्राप्त करने के लिये लालायित हो उठा और उसने इसी उद्देश्य से चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। दीर्घ काल तक उसने चित्तौड़ पर घेरा डाल रखा, किंतु कोई सफलता होती उसे न दिखाई पड़ी, इसलिये उसने धोखे से रतनसिंह राजपूत को बंदी करने का उपाय किया। उसने उसके पास संधि का संदेश भेजा, जिसे रतन सिंह राजपूत

ने स्वीकार कर अलाउद्दीन को विदा करने के लिये गढ़ के बाहर निकला, अलाउद्दीन ने उसे बंदी कर दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया।

चित्तौड़ में पद्मावती अत्यंत दु:खी हुई और अपने पति को मुक्त कराने के लिये वह अपने सामंतों गोरा तथा बादल के घर गई। गोरा बादल ने रतनसिह राजपूत को मुक्त कराने का बीड़ा लिया। उन्होंने सोलह सौ डोलियाँ सजाईं जिनके भीतर राजपूत सैनिकों को रखा और दिल्ली की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यह कहलाया कि पद्मावती अपनी चेरियों के साथ सुल्तान की सेवा में आई है और अंतिम बार अपने पति रतनसेन से मिलने के लिय आज्ञा चाहती है। सुल्तान ने आज्ञा दे दी। डोलियों में बैठे हुए राजपूतों ने रतनसिंह राजपूत को बेड़ियों से मुक्त किया और वे उसे लेकर निकल भागे। सुल्तानी सेना ने उनका पीछा किया, किंतु रतन सिंह राजपूत सुरक्षित रूप में चित्तौड़ पहुँच ही गया।

जिस समय वह दिल्ली में बंदी था, कुंभलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती के पास एक दूत भेजकर उससे प्रेमप्रस्ताव किया था। रतन सिंह राजपूत से मिलने पर जब पद्मावती ने उसे यह घटना सुनाई, वह चित्तौड़ से निकल पड़ा और कुंभलनेर जा पहुँचा। वहाँ उसने देवपाल को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा। उस युद्ध में वह देवपाल की सेल से बुरी तरह आहत हुआ और यद्यपि वह उसको मारकर चित्तौड़ लौटा किंतु देवपाल की सेल के घाव से घर पहुँचते ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। पद्मावती और नागमती ने उसके शव के साथ चितारोहण किया। अलाउद्दीन भी रतनसिंह राजपूत का पीछा करता हुआ चित्तौड़ पहुँचा, किंतु उसे पद्मावती न मिलकर उसकी चिता की राख ही मिली।

इस कथा में जायसी ने इतिहास और कल्पना, लौकिक और अलौकिक का ऐसा सुंदर सम्मिश्रण किया है कि हिंदी साहित्य में दूसरी कथा इन गुणों में 'पद्मावत' की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकी है। प्राय: यह विवाद रहा है कि इसमें कवि ने किसी रूपक को भी निभाने का यत्न किया है। रचना के कुछ संस्करणों में एक छंद भी आता है, जिसमें संपूर्ण कथा को एक आध्यात्मिक रूपक बताया गया है और कहा गया है कि चित्तौड़ मानव का शरीर है, राजा उसका मन है, सिंहल उसका हृदय है, पदमिनी उसकी बुद्धि है, सुग्गा उसका गुरु है, नागमती उसका लौकिक जीवन है, राघव शैतान है और अलाउद्दीन माया है, इस प्रकार कथा का अर्थ समझना चाहिए। किंतु यह छंद रचना की कुछ ही प्रतियों में

मिलता है और वे प्रतियाँ भी ऐसी ही हैं, जो रचना की पाठपरंपरा में बहुत नीचे आती है। इसके अतिरिक्त यह कुंजी रचना भर में हर जगह काम भी नहीं देती है : उदाहरणार्थ गुरु-चेला-संबंध सुग्गे और रतनसेन में ही नहीं है, वह रचना के भिन्न भिन्न प्रसंगों में रतनसेन-पद्मावती, पद्मावती-रतनसेन और रतनसेन तथा उसके साथ के उन कुमारों के बीच भी कहा गया है, जो उसके साथ सिंहल जाते हैं। वस्तुतः इसी से नहीं, इस प्रकार की किसी कुंजी के द्वारा भी कठिनाई हल नहीं होती है और उसका कारण यही है कि किसी रूपक के निर्वाह का पूरी रचना में यत्न किया ही नहीं गया है। जायसी का अभीष्ट केवल प्रेम का निरूपण करना ज्ञात होता है। वे स्थूल रूप में प्रेम के दो चित्र प्रस्तुत-करते हैं : एक तो वह जो आध्यात्मिक साधन के रूप में आता है, जिसके लिये प्राणों का उत्सर्ग भी हँसते हँसते किया जा सकता है, रतनसेन और पद्मावती का प्रेम इसी प्रकार का है : रतनसेन पद्मावती को पाने के लिये सिंहलगढ़ में प्रवेश करता है और शूली पर चढ़ने के लिये हँसते हँसते आगे बढ़ता है, पद्मावती रतनसेन के शव के साथ हँसते हँसते चितारोहण करती है और अलाउद्दीन जैसे महान सुल्तान की प्रेयसी बनने का लोभ भी अस्वीकार कर देती है। दूसरा प्रेम वह है, जो अलाउद्दीन पद्मावती से करता है। दूसरे की विवाहितापत्नी को वह अपने भौतिक बल से प्राप्त करना चाहता है। किंतु जायसी प्रथम प्रकार के प्रेम की विजय और दूसरे प्रकार के प्रेम की पराजय दिखाते हैं। दूसरा उनकी दृष्टि में हेय और केवल वासना है, प्रेम पहला ही है। जायसी इस प्रेम को दिव्य कहते हैं।

अध्याय योजना

पद्मावत में उपसंहार समेत 58 अध्याय हैं। इनके नाम हैं- स्तुति खंड, सिंहलद्वीप वर्णन खंड, जन्म खंड, मानसरोदक खंड, सुआ खंड, रत्नसेन जन्म खंड, बनिजारा खंड, नागमती सुआ खंड, राजा सुआ संवाद खंड, नखशिख खंड, प्रेम खंड, जोगी खंड, राजा गनपति संवाद खंड, बोहित खंड, सात समुद्र खंड, सिंहल द्वीप खंड, मंडप गमन खंड, पद्मावती वियोग खंड, पद्मावती सुआ भेट खंड, वसंत खंड, राजा रत्नसेन सती खंड, पार्वती महेश खंड, राजा गढ़ छेका खंड, गन्धर्व सेन मंत्री खंड, रत्नसेन सूली खंड, रत्नसेन पद्मावती विवाह खंड, पद्मावती रत्नसेन भेंट खंड, रत्नसेन साथी खंड, षट्तु वर्णन खंड, नागमती वियोग खंड।

7

रसखान की प्रमुख पुस्तकें

रसखान कृष्ण भक्त मुस्लिम कवि थे। उनका जन्म पिहानी, भारत में हुआ था। हिन्दी के कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों में रसखान का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे विट्ठलनाथ के शिष्य थे एवं वल्लभ संप्रदाय के सदस्य थे। रसखान को 'रस की खान' कहा गया है। इनके काव्य में भक्ति, श्रृंगार रस दोनों प्रधानता से मिलते हैं। रसखान कृष्ण भक्त हैं और उनके सगुण और निर्गुण निराकार रूप दोनों के प्रति श्रद्धावनत हैं। रसखान के सगुण कृष्ण वे सारी लीलाएं करते हैं, जो कृष्ण लीला में प्रचलित रही हैं। यथा- बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला, प्रेम वाटिका, सुजान रसखान आदि। उन्होंने अपने काव्य की सीमित परिधि में इन असीमित लीलाओं को बखूबी बाँधा है। मथुरा जिले में महाबन में इनकी समाधि हैं।

परिचय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिन मुस्लिम हरिभक्तों के लिये कहा था, 'इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिए' उनमें **रसखान** का नाम सर्वोपरि है। **बोधा** और **आलम** भी इसी परम्परा में आते हैं। सय्यद इब्राहीम 'रसखान' का जन्म उपलब्ध स्रोतों के अनुसार सन् 1533 से 1558 के बीच कभी हुआ था। कई विद्वानों के अनुसार इनका जन्म सन् 1590 ई. में हुआ था। चूँकि अकबर

का राज्यकाल 1556-1605 है, ये लगभग अकबर के समकालीन हैं। इनका जन्म स्थान पिहानी जो कुछ लोगों के मतानुसार दिल्ली के समीप है। कुछ और लोगों के मतानुसार यह पिहानी उत्तरप्रदेश के हरदोई जिले में है। माना जाता है की इनकी मृत्यु 1628 में वृन्दावन में हुई थी। यह भी बताया जाता है कि रसखान ने भागवत का अनुवाद फारसी और हिंदी में किया है।

रसखान के जन्म के सम्बंध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। अनेक विद्वानों ने इनका जन्म संवत् 1615 ई. माना है और कुछ ने 1630 ई. माना है। रसखान के अनुसार गदर के कारण दिल्ली श्मशान बन चुकी थी, तब दिल्ली छोड़कर वह ब्रज (मथुरा) चले गए। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर पता चलता है कि उपर्युक्त गदर सन् 1613 ई. में हुआ था। उनकी बात से ऐसा प्रतीत होता है कि वह उस समय वयस्क हो चुके थे।

रसखान का जन्म संवत् 1590 ई. मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। भवानी शंकर याज्ञिक का भी यही मानना है। अनेक तथ्यों के आधार पर उन्होंने अपने मत की पुष्टि भी की है। ऐतिहासिक ग्रंथों के आधार पर भी यही तथ्य सामने आता है। यह मानना अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है कि रसखान का जन्म सन् 1590 ई. में हुआ था।

रसखान के जन्म स्थान के विषय में भी कई मतभेद है। कई विद्वान उनका जन्म स्थल पिहानी अथवा दिल्ली को मानते हैं। **शिवसिंह सरोज** तथा हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास तथा ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रसखान का जन्म स्थान पिहानी जिला हरदोई माना जाए।

रसखान अर्थात् रस के खान, परंतु उनका असली नाम सैयद इब्राहिम था और उन्होंने अपना नाम केवल इस कारण रखा ताकि वे इसका प्रयोग अपनी रचनाओं पर कर सकें।

रसखान तो रसखान ही था जिसके नाम में भी रस की खान थी। रसखान जैसा भगवान का भक्त होना मुश्किल है।

रसखान रचनावली : रसखान की सम्पूर्ण कृतियों का प्रामाणिक संस्करण, विस्तृत भूमिका और जीवन-चरित सहित।

8

मैग्ना कार्टा

मैग्ना कार्टा (Magna Carta) या मैग्ना कार्टा लिबरटैटम् (Great Charter of Freedoms या आजादी का महान चार्टर) इंग्लैण्ड का एक कानूनी परिपत्र है, जो सबसे पहले सन् 1215 ई में जारी हुआ था। यह लैटिन भाषा में लिखा गया था।

मैग्ना कार्टा में इंग्लैण्ड के राजा जॉन ने सामन्तों (nobles and barons) को कुछ अधिकार दियेय कुछ कानूनी प्रक्रियाओं के पालन का वचन दियाय और स्वीकार किया कि उनकी इच्छा कानून के सीमा में बंधी रहेगी। मैग्ना कार्टा ने राजा की प्रजा के कुछ अधिकारों की रक्षा की स्पष्ट रूप से पुष्टि की, जिनमें से बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका (habeas corpus) उल्लेखनीय है।

चार्टर की महत्ता इस तथ्य में निहित है कि प्रत्येक पीढ़ी ने इसकी वैधानिक व्याख्या कर इस सिद्धांत पर जोर दिया कि राजा को कानून का सम्मान अनिवार्य करना चाहिए। यह सामंतों तथा साधारण जनता दोनों के लिये वैधानिकता का प्रतीक बना तथा ब्रिटिश वैधानिक अधिनियमन का श्रीगणेश भी यहीं से हुआ माना जाता है।

परिचय

मैग्ना कार्टा (1215 ई.) मैगना कार्टा अथवा महान्-परिपत्र 15 जून 1215 ई. को, थेम्स नदी के किनारे स्थित रनीमीड स्थान पर राजा जॉन ने

इंग्लैंड के सामंतों को प्रदान किया था। **हैलम** के शब्दों में, यह कालांतर में इंग्लिश स्वातंत्र्य का प्रधान आधार बना, यद्यपि इसके रचयिता, जनस्वातंत्र्य उद्देश्य से अनुप्रेरित नहीं थे। वे अपने अधिकारों के प्रतिपादन में लगे थे। सामंत (बैरन), जो इसकी रचना में संलग्न थे, स्वभावत: अपनी स्थिति को सुरक्षित कर रहे थे। उन्हें दूसरे वर्गों के स्वार्थों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। अत: चार्टर, राजा तथा बैरन के बीच एक प्रसंविदा था, जो सामंतवादी प्रथा पर आधारित था। चार्टर की दो तिहाई धाराएँ सामंतों के कष्टों की सूची थीं। किंतु रचयिताओं ने परिपत्र के द्वारा अपनी माँगों के अतिरिक्त, सभी वर्गों को संतुष्ट करने के लिये प्रशासकीय सुधारों के भी सन्निहित किया था। चार्टर की उपयोगिता समाप्त हो जाने के उपरांत भी, इसकी धाराएँ सम्मान की दृष्टि से अधिक समय तक देखी गई।

ऐतिहासिक कारण

चार्टर, राजा जॉन द्वारा बैंरनों पर अधिक वषों से लादे गए अन्यायपूर्ण करों तथा अत्यचाचारों का परिणाम था। पोप से संघर्ष ले लेने के उपरांत, जॉन ने पादरियों के साथ भी अत्याचारपूर्ण व्यवहार उसी मात्र जारी में रखा। वस्तुत: राजा ने समस्त जनता के प्रति एक नृशंसता की नीति अपनाई। फलत: राष्ट्रीय विद्रोह की भावना जाग्रत होने लगी। बैरन विद्रोह के प्रथम लक्षण 1212 ई. में परिलक्षित हुए किंतु वास्तविक अशांति उस समय फैली जब आर्कबिशप स्टेफन के नेतृत्व में बैरनों ने लंदन में सेंट पाल की गोष्ठी में अपने कष्टों पर विचार किया तथा हेनरी प्रथम द्वारा स्वीकृत चार्टर के आधार पर, उपनी माँगे रखी। 1214 ई. में फ्रांस ने जॉन को परास्त कर शांति के लिये बाध्य किया। इंग्लैंड वापस आने पर, बैरनों के एक संघ ने अपनी माँगो की एक सूची उसके सामने रखी। जॉन ने प्रस्ताव को स्थापित करने के लिये झूठा बादा किया और इस बीच में युद्ध का तैयारी प्रारंभ की। विदेशों से किराए के सैनिक मँगाए तथा चर्च को अपनी ओर मिलाने की कोशिश की। किंतु बैरन शक्तिशाली हो चले थे। बैरनों के विद्रोह को साधारण जनता से अधिक सहायता मिली, क्योंकि जॉन के विदेशी युद्ध तथा आंतरिक दमननीति ने आंतरिक स्थिति को असह्य बना दिया था। शक्ति से सामना करने में असमर्थ पाकर जॉन चार्टर पर हस्ताक्षर करने को बाध्य हो गया।

चार्टर की धाराएँ

चार्टर 63 धाराओं का था। अधिकांश धाराएँ राजा के विशेषाधिकारों के विरुद्ध सामंतो के अधिकारों का समर्थन करती थीं। चार्टर की मुख्य धाराएँ निम्नांकित है–

(1) चर्च व्यवस्था तथा स्वतंत्र चुनाव,
(2) तथा सामंतों के संबंध,
(3) साधारण वैधानिक व्यवस्था,
(4) आसामी के अधिकार,
(5) नगर, वाणिज्य तथा व्यापारियों के अधिकार,
(6) स्वायत्तशासन के दोषों का निराकरण,
(7) न्याय तथा विधि व्यवस्था में सुधार,
(8) कानून व्यवस्था,
(9) चार्टर का प्रतिपादन तथा व्यवहार्य बनाना, आदि।

इस व्यापक परिपत्र की चार धाराएँ सदैव के लिये वैधानिक महतव की सिद्ध हुई। 12वीं धरा ने घोषित किया कि किसी भी प्रकार की सेवा अथवा सहायता बिना राज्य की साधारण परिषद् की स्वीकृति के नहीं ली जायगी। 14वीं धारा ने साधारण परिषद् की रचना बताई। इस विधान सभा में आर्क बिशप, बिशप, अर्ल तथा बड़े बड़े बैरन पृथक् पृथक् आज्ञापत्रों से आमंत्रित होंगे तथा प्रमुख कृषक जिलाधीश के द्वारा सूचित किए जायँगे। 39वीं धारा ने दैहिक स्वातँर्त्य की चर्चा करते हुए कहा कि किसी भी स्वतंत्र नागरिक को राज्य के नियमों अथवा वैधानिक निर्णय के प्रतिकूल किसी भी दिशा में बंदी, संपतिरहित, गैरकानूनी या निष्कासित नहीं घोषित किया जायगा। 40वीं धारा ने यह घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति के नैयायिक अधिकारों पर किसी भी प्रकार का आधात नहीं होगा। कालांतर में जनस्वातंर्त्य, जूरी के द्वारा न्यायप्रशासन, कानून की द्यष्टि में सबके समानाधिकार तथा कानून की राज्य में सर्वश्रेष्ठता इत्यादि इसी चार्टर की प्रशाखाएँ सिद्ध हुई। चार्टर में किसी नवीनता का समावेश नहीं किया गया था। इसने केवल जॉन द्वारा अतिक्रमित रीतियों एवं प्रथाओं की पुनरावृति की।

प्रभाव एवं परिणाम

हस्ताक्षर के उपरांत चार्टर की प्रतियाँ प्रत्येक सामंत एवं पादरी के प्रदेश में वर्ष में दो बार उच्च स्वर में सार्वजनिक घोषणा के लिये भेजी गई। जॉन ने

यद्यपि हस्ताक्षर किए, तथापि कार्यान्वित करने में आपति प्रकट की। उसने पोप से प्रार्थना की तथा एक विशेष पोपादेश के द्वारा चार्टर को अवैध सिद्ध कराया। किराए के सैनिक एकत्रित कर बैरनों के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। एक वर्ष तक गृहयुद्ध चला और 1216 ई. में जॉन की मृत्यु हो जाने से यह युद्ध बंद हुआ। उसकी मृत्यु पर, चार्टर की अंर्तकालीन धाराओं को निकाल कर, चार्टर को पुनर्घोषित किया गया। 1225 ई. में कुछ परिवर्तन के उपरांत चार्टर की फिर घोषणा हुई। एडवर्ड षष्टम् तक प्रत्येक माध्यमिक युग के शासक ने चार्टर की वैध बताया।

9

जियाउद्दीन बरनी की प्रमुख पुस्तकें

जियाउद्दीन बरनी (1285द्1357) एक इतिहासकार एवं राजनैतिक विचारक था जो मुहम्मद बिन तुगलक और फिरोज शाह के काल में भारत में रहा। 'तारीखे फोरोजशाही' उसकी प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृति है।

परिचय

उसका जन्म सुल्तान बलबन के राज्यकाल में 1285-86 ई. में हुआ। उसका नाना, सिपहसालार हुसामुद्दीन, बलबन का बहुत बड़ा विश्वासपात्र था। उसके पिता मुईदुलमुल्क तथा उसके चाचा अलाउलमुल्क को सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी तथा सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल में बड़ा सम्मान प्राप्त था। जियाउद्दीन बरनी ने अपनी बाल्यावस्था में अपने समकालीन बड़े बड़े विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की थी। वह शेख निजामुद्दीन औलिया का भक्त था। अमीर खुसरो का बड़ा घनिष्ठ मित्र था। अन्य समकालीन विद्वानों एवं कलाकारों से भी वह भली भाँति परिचित था। सुल्तान फीरोज तुगलक के राज्यकाल में उसे अपने शत्रुओं के कारण बड़े कष्ट भोगने पड़े। वह बड़ी ही दीनावस्था को प्राप्त हो गया। कुछ समय तक उसने बंदीगृह के भी कष्ट भोगे। उसने अपने समस्त ग्रंथों

की रचना सुल्तान फीरोज के राज्यकाल में ही की किंतु उसे कोई भी प्रोत्साहन न मिला और बड़ी ही शोचनीय दशा में, 70 वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हुई। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के राज्य काल में उसकी बड़ी उन्नति हुई। संभवत: वह सुल्तान का नदीम (सहचर) था। आलिमों तथा सूफियों से संपर्क स्थापित करने में उसकी सेवाओं से बड़ा लाभ उठाया जाता होगा। बड़े बड़े अमीर एवं पदाधिकारी उसके द्वारा अपने प्रार्थनापत्र सुल्तान की सेवा में प्रस्तुत करते थे। देवगिरि की विजय की बधाई फीरोज शाह, मलिक कबीर तथा अहमद अयाज ने उसी के द्वारा सुल्तान मुहम्मद बिन तुग्लाकघ की सेवा में प्रेषित की।

उसकी रचनाओं में तारीखे फीरोजशाही का बड़ा महत्त्व है। इसकी प्रस्तावना में उसने इतिहास की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए इतिहासकार के कर्तव्य का भी उल्लेख किया है। इस इतिहास में उसने सुल्तान बलबन के राज्यकाल से लेकर सुल्तान फीरोज के राज्य काल के प्रथम छह वर्षों तक का इतिहास लिखा है। बरनी अपने इतिहास द्वारा अपने समकालीन उच्च वर्ग का पथप्रदर्शन करना तथा अपने समकालीन सुल्तान फीरोज शाह के समक्ष एक आदर्श रखना चाहता था। यद्यपि उसकी जानकारी के साधन बड़े ही महत्त्वपूर्ण थे तथापि उसके इतिहास से लाभ उठाने के लिए तथा बलबन, सुल्तान जलालुद्दीन खलजी, सुल्तान अलाउद्दीन खलजी एवं सुल्तान मुहम्मद बिन तुग्लाक के विचार जो उसने उद्धृत किए हैं, भली भाँति समझने के लिए बरनी की धार्मिक कट्टरता एवं उसके राजनीतिक सिद्धांतों को सामने रखना परमावश्यक है। फतावाये जहाँदारी नामक ग्रंथ में, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है, उसके राजनीतिक सिद्धांतों पर बड़ा ही विशद प्रकाश पड़ता है। सहीफये नाते मुहम्मदी की भी, जिसमें हजरत मुहम्मद की जीवनी एवं उनके गुणों का उल्लेख है, केवल एक ही प्रति प्राप्त है। प्रारंभिक अब्बासी खलीफाओं के प्रसिद्ध वजीरों का भी इतिहास उसने लिखा है, जो प्रकाशित हो चुका है।

10

दांते एलीगियरी की प्रमुख पुस्तकें

दाँते एलीगियरी मध्यकाल के इतालवी कवि थे। ये वर्जिल के बाद इटली के सबसे महान कवि कहे जाते हैं। ये इटली के राष्ट्रकवि भी रहे। उनका सुप्रसिद्ध महाकाव्य डिवाइन कॉमेडिया अपने ढंग का अनुपम प्रतीक महाकाव्य है। इसके अतिरिक्त उनका गीतिकाव्य वीटा न्युओवा, जिसका अर्थ है नया जीवन, अत्यंत मार्मिक कविताओं का एक संग्रह है, जिसमें उन्होंने अपनी प्रेमिका सीट्रिस की प्रेमकथा तथा 23 वर्षों में ही उसके देहावसान पर मार्मिक विरह कथा का वर्णन किया है। इनका जन्म यूरोप में, इटली में हुआ था। ये फ्लोरेंस के नागरिक थे। उनका परिवार प्राचीन था, फिर भी उच्चवर्गीय नहीं था। उनका जन्म उस समय हुआ जब मध्ययुगीन विचारधारा और संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रारम्भ हो रहा था। राजनीति के विचारों और कला संबंधी मान्यताओं में भी परिवर्तन हो रहा था।

मई-जून 1295 में जन्में दांते इटली के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं जिनके संबंध में अंग्रेज कवि **शेली** ने कहा है कि,

'दांते का काव्य उस सेतु के समान है, जो काल की धारा पर बना है और प्राचीन विश्व को आधुनिक विश्व से मिलाता है।'

दांते ने लैटिन भाषा में ना लिखकर साधारण बोलचाल की इतालवी भाषा में अपना महाकाव्य लिखा। मातृभाषा और लोकप्रचलित भाषा को अपनी महान कृतियों से गौरवान्वित किया। यह कार्य तुलसीदास के रामचरितमानस के भाषा में लिखने के समान था। वास्तव में यह समय विश्वभर में लोकभाषा की प्रतिष्ठा के आन्दोलन का समय था। भारत में भी रामानंद, ज्ञानेश्वर, नामदेव, विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसीदास, इत्यादि ने इसी प्रकार लोकभाषा में साहित्य रचना का आन्दोलन किया। वास्तव में दांते का यह कार्य युगपरिवर्तन का शंखनाद था। इतालवी भाषा में डिवाइन कॉमेडिया द्वारा दांते का स्थान अमर है।

दांते केवल कवि और विचारक ही नहीं थे, वरन वे राजनीतिक नेता और प्रशासक भी थे। उन्होंने फ्लोरेंस राज्य पर शासन भी किया। परन्तु उनके कला और काव्य-शास्त्र संबंधी विचार उनकी कृति दे वल्गरी एलोक्युओ में प्राप्त होते हैं। वे उत्कृष्ट कविता से ही संतुष्ट ना होकर यह भी बताते हैं, कि सर्वोत्कृष्ट कविता किन बातों पर निर्भर करती है। प्रेम जैसे विषयों को और लोकभाषाओं को अपनी रचनाओं में महत्त्व प्रदान करके उन्होंने ग्रीक और लैटिन परम्पराओं के विरुद्ध एक क्रांतिकारी पदान्यास किया।

दांते के विचार से परिष्ठित सौष्ठवपूर्ण भाषा, उत्तम अभिव्यंजना शैली तथा उपयुक्त विषयवस्तु का सामंजस्य होने पर ही श्रेष्ठ रचना संभव हो सकती है। इस प्रकार दांते ने सर्वश्रेष्ठ रचना के लिए भद्दे और ग्राम्य शब्दों को छोड़कर लोकभाषा से और शिष्टभाषा से भी उत्तम शब्दों का चयन कर अपने काव्य की रचना की है। दे वल्गरी एलोक्युओ ग्रन्थ की जॉर्ज सेंट्स्बरी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। दांते के बाद इटली में उतना बड़ा महत्त्वपूर्ण काव्य चिन्तक **क्रोचे** के पूर्व नहीं हुआ।

परिचय

आलीग्यारी दाँते की ग्रीक तथा लातीनी साहित्य के सिवा धर्मविज्ञान में भी उसकी विशेष रुचि थी। राजनीति में वह नरम दल का अनुयायी और समर्थक था, किंतु सन् 1301 में जब गुएल्फों के क्रांतिकारी दल द्वारा इसके पक्ष की पराजय हुई, तब दाँते तथा उसके साथियों को देशनिकाले का दंड भोगना पड़ा। इस सजा के बाद दुर्भाग्य से यदि वह फ्लोरेंटाइन सरकार के हाथ पकड़ लिया जाता तो उसके जीवित जला दिए जाने तक की संभावना थी। इस समय से मृत्यु पर्यंत वह एक

स्थान से दूसरे और दूसरे से तीसरे एक तीर्थयात्री की या करीब-करीब एक भिखारी की तरह बराबर भटकता रहा। इन दिनों उसकी स्थिति पतवारविहीन नौका की तरह हो गई थी। दर-दर की ठोकरें खाते हुए उसने बड़ी कटुता के साथ अनुभव किया कि दूसरे के घर की रोटी कितनी स्वादहीन होती है और पराए घर की सीढ़ियों पर चढ़ते उतरते रहने में कितनी पीड़ा का अनुभव होता है। सन् 1316 में फ्लारेंस की ओर से सार्वजनीन राजक्षमा की घोषणा की गई और किन्हीं अपमानजनक शर्तों पर उसे फ्लोरेंस लौटने की अनुमति भी दी गई। उसने इसे ठुकरा दिया और अंत तक प्रवास में ही जीवनयापन का निश्चय किया। सन् 1321 में रावेन्ना में उसकी मृत्यु हुई और वहीं वह दफनाया गया। रावेन्ना के अधिकारी आज भी उसके शव को उसकी जन्मभूमिवालों को लौटाने के लिए तैयार नहीं, जिन्होंने उसके साथ ऐसा निंदनीय व्यवहार किया था।

दाँते के जीवन के साथ दो स्त्रियों के नाम घनिष्ठ रूप से संबंद्ध हैं। एक है **बियात्रिस पोर्टिनारी** और दूसरी **जेम्या दोनाती**। पहली उसकी युवावस्था की प्रेयसी थी जिसे उसने उस समय देखा था जब वह केवल नौ वर्ष की थी। साइमन डी बार्डी के साथ बियात्रिस का विवाह हो जाने तथा थोड़े ही समय के भीतर सन् 1290 में उसकी मृत्यु हो जाने के बाद भी दाँते उसके अनुराग में डूबा रहा। दूसरी महिला, जेम्या, उसकी विवाहिता पत्नी थी जिसके साथ उसका विवाह सन् 1277 में हुआ था। दाँते के निर्वासित होने पर उसने उसका साथ नहीं दिया। स्पष्ट है कि दाँते उसके व्यवहार और रंग ढंग से संतुष्ट न था और बाद में संभवत: उससे घृणा भी करने लगा था।

कृतियाँ

De vulgari eloquentia, 1577,
लैटिन भाषा:,
डी वल्गारी एलोक्वेंटा,
डी मोनार्किया,
एक्लोग्यूस,
लेटार्स,
इतालवी भाषा:
डिवाइन कॉमेडी,

इन्फर्नो,
पुर्गातोरियो,
पैरादिसो,
ला वीटा न्युओवा,
ले रिमे।

कॉन्विवियो

दाँते की रचनाओं की सुविधा की दृष्टि से हम तीन भागों या कालों में बाँट सकते हैं। प्रथम भाग में वे कृतियाँ रखी जा सकती हैं जिनमें यौवन का उत्साह और बियात्रिस के प्रति उसके उत्कट अनुराग का धार्मिक रूपांतरण दृष्टिगोचर होता है। इसकी अवधि मोटे तौर पर 1283 से 1290 तक मानी जा सकती है। इस काल की सबसे मुख्य रचना विटा नुओवा है। दूसरा भाग वियात्रिस की मृत्यु के बाद शुरू होता है। इसका विस्तार 1291 से 1313 तक रखा जा सकता है। इस काल में उसका जीवन निराशा, दुरूख एवं विश्वास पर अस्थायी रूप से तर्कबुद्धि का प्राधान्य छा गया और उसका झुकाव दर्शन तथा विज्ञान की और अधिक हो गया। वह राजनीतिक झगड़ों की कटुता में एक दाँव पेचों या योजनाओं में लिप्त होता गया। इस काल की मुख्य रचनाएँ हैं – दि कॉनवीवियो, दि मॉनर्किया, दि इपिसिल्स आदि। सम्राट् हेनरी सप्तम से दाँते ने बड़ी-बड़ी आशा बाँध रखी थी जिनपर उसकी मृत्यु ने पानी फेर दिया। उसकी समस्त योजनाएँ एकाएक समाप्त हो गई किंतु गनीमत यही रही कि वे उसका संपूर्ण हौंसला पस्त न कर सकीं। उसने एक बार फिर आध्यात्मिक संतुलन की ओर कदम बढ़ाया। युवावस्था के विचार और विश्वास उसमें पुनः जाग उठे और वह दिवंगत बियात्रिस की पवित्रीभूत आत्मा की उपासना की ओर और भी दृढ़ता से उन्मुख हो उठा। 'डिवाइन कॉमेडी' की कितनी ही कविताओं में इसके प्रमाण बिखरे पड़े हैं। दाँते की रचनाओं का यह तीसरा काल 1314 से 1321 तक, यानी उसकी मृत्यु के समय तक, माना जा सकता है।

'दि विटा नुओवा' को हम इटली के प्रथम प्रेमकाव्य की संज्ञा दे सकते हैं। इसमें कविहृदय की उक्त भावनाओं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की झलक हमें देख पड़ती है। बियात्रिस के प्रथम दर्शन के बाद ही किस तरह उसके नए जीवन का आरंभ हुआ, उसके हृदय में किस तरह क्रम-क्रम से इस नारी के

सौंदर्य एवं माधुर्य की भावना प्रबलतर होती गई, धीरे-धीरे वह किस तरह उसकी आशाओं तथा प्रेम-भक्ति-उपासना का केंद्र बनती गई, उसी मृत्यु पर उसे कितनी मानसिक वेदना और आकुलता हुई और किस प्रकार उसका पार्थिव प्रेम अंत में दिव्य भक्ति एवं पूजाभाव में परिणत होता गया, इसकी मनोरम झाँकी इस काव्य में देखी जा सकती है। बियात्रिस की मृत्यु के बाद उसका ध्यान कुछ वर्षों के लिए इहलौकिक भावनाओं, विचारों तथा स्वार्थों की ओर गया और वह निराशाओं अथवा संशयों के बीच हिलोरे खाने लगा। यह हम उसकी दूसरी रचना 'कॉनबाइवों' में देख सकते हैं। इन दोनों रचनाओं में बियात्रिस कहाँ और कब एक अलौकिक सौंदर्य की प्रतिमा प्रतीत होती है और कहाँ वह मात्र एक दार्शनिक अथवा धार्मिक दृष्टि से कल्पित दिव्य छाया सी दीख पड़ती है, इसका विवेचन करना अनावश्यक है। इतना ही कहना अलम् होगा कि 'विटा नुओवा' सामान्य प्रेमगाथा न होकर एक उच्च सात्विकता एवं श्रद्धा (फेथ) की ओर कवि का मानसिक उन्नयन है। इसमें संदेह नहीं कि आशा-निराशाओं के विविध अंतद्वंद्वों के बावजूद दाँते का हृदय बार-बार इसी ओर प्रत्यावर्ती होने के लिए सचेष्ट होता जान पड़ता है। वस्तुतः काव्य के अंतिम भाग से ही आभास मिलने लगता है कि कवि के मानस चक्षु पर उस पारलौकिक जगत् की छाया पड़नी आरंभ हो चुकी थी जिसका केंद्रबिंदु बियात्रिस ही थी और जिसका परिपाक उसके 'डिवाइन कॉमेडी' नामक काव्य में हुआ।

दाँते की लातीनी रचनाओं में 'दे मोनार्किया' विशेष उल्लेखनीय है। इसमें दिखलाया गया है कि साम्राज्य की आवश्यकत एक तरह से ईश्वरसमर्थित है। उनमें राज्य तथा चर्च या धार्मिक संस्था के पृथक्-पृथक् क्षेत्र का प्रतिपादन किया गया है और इस बात पर बल दिया गया है कि पोप की सत्ता केवल धार्मिक मामलों तक ही सीमित रहनी चाहिए। उसे पत्रसंग्रह 'इपिसिल्स' में से भी कई पत्रों में इसी आशय के विचार प्रकट किए गए हैं।

दाँते के पक्ष विपक्ष में काफी आलोचनाएँ हुई जिनके उसकी कीर्ति कभी कभी मलिन हो जाती सी दिखाई पड़ती थी। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि वह महान कवि था जिसने अपने परवर्ती अनेक कवियों तथा साहित्यकारों को व्यापक रूप से प्रभावित किया। समय बीतने पर अनेक विद्वानों और विचारकों ने उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है जिससे आज विश्व के साहित्यकारों तथा कवियों में उसे यथेष्ट ऊँचा स्थान देने में सहायता मिलती है।

दीविना कॉमेदिया

डिविना कामेडिया (इतालवी : Divina Commedia) महान इतालवी दार्शनिक, कवि, लेखक दांते एलीगियरी द्वारा लिखित एक महान ग्रंथ है। यह अपने ढंग का अनुपम प्रतीक महाकाव्य है। मनुष्य के 7 सद्गुणों को दो भागों में बांटा गया है। पहले चार ग्रीक समाज के हैं, जिन्हें हम हर समाज पर लागू कर सकते हैं–

विवेक,
न्याय,
संयम,
साहस,
जबकि 3 धार्मिक सद्गुण ईसाई धर्म से लिए गए हैं–
दयालुता,
विश्वास,
आशा।
महान दार्शनिक दांते की रचना दि डिवाइन कॉमेडी के अनुसार ये सद्गुण–दुर्गुण हैं–
सात सद्गुण,
विनम्रता,
उदारता (प्रशंसा),
क्षमाशीलता,
परिश्रम,
दयालुता,
संयम,
पवित्रता,
सात दुर्गुण,
ईर्ष्या,
क्रोध,
आलस्य,
लालच,
भोग,
आसक्ति,
कामुकता।

11

रहीम की प्रमुख पुस्तकें

अब्दुल रहीम खान-ए-खानाँ या सिर्फ रहीम, एक मध्यकालीन कवि, सेनापति, प्रशासक, आश्रयदाता, दानवीर, कूटनीतिज्ञ, बहुभाषाविद, कलाप्रेमी, एवं विद्वान थे। वे भारतीय सामासिक संस्कृति के अनन्य आराधक तथा सभी संप्रदायों के प्रति समादर भाव के सत्यनिष्ठ साधक थे। उनका व्यक्तित्त्व बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न था। वे एक ही साथ कलम और तलवार के धनी थे और मानव प्रेम के सूत्रधार थे।

जन्म से एक मुसलमान होते हुए भी हिंदू जीवन के अंतर्मन में बैठकर रहीम ने जो मार्मिक तथ्य अंकित किये थे, उनकी विशाल हृदयता का परिचय देती हैं। हिंदू देवी-देवताओं, पर्वों, धार्मिक मान्यताओं और परंपराओं का जहाँ भी उनके द्वारा उल्लेख किया गया है, पूरी जानकारी एवं ईमानदारी के साथ किया गया है। वे जीवनभर हिंदू जीवन को भारतीय जीवन का यथार्थ मानते रहे। रहीम ने काव्य में रामायण, महाभारत, पुराण तथा गीता जैसे ग्रंथों के कथानकों को उदाहरण के लिए चुना है और लौकिक जीवनव्यवहार पक्ष को उसके द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है, जो भारतीय संस्कृति की वर झलक को पेश करता है।

छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यौ, जो भृगु मारी लात।।

जीवन-परिचय

अबदुर्रहीम खानखाना का जन्म संवत् 1613 (ई. सन् 1556) में लाहौर में हुआ था। संयोग से उस समय हुमायूँ, सिकंदर सूरी के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए सैन्य के साथ लाहौर में मौजूद था।

रहीम के पिता बैरम खाँ तेरह वर्षीय अकबर के शिक्षक तथा अभिभावक थे। बैरम खाँ खान-ए-खाना की उपाधि से सम्मानित थे। वे हुमायूँ के साढ़ू और अंतरंग मित्र थे। रहीम की माँ मेवाती वर्तमान हरियाणा प्रांत के राजपूत जमाल खाँ की सुंदर एवं गुणवती कन्या सुल्ताना बेगम थी। जब रहीम पाँच वर्ष के ही थे, तब गुजरात के पाटण नगर में सन 1561 में इनके पिता बैरम खाँ की हत्या कर दी गई। रहीम का पालन-पोषण अकबर ने अपने धर्म-पुत्र की तरह किया। शाही खानदान की परंपरानुरूप रहीम को 'मिर्जा खाँ' का खिताब दिया गया। रहीम ने बाबा जंबूर की देख-रेख में गहन अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त होने पर अकबर ने अपनी धाय की बेटी माहबानो से रहीम का विवाह करा दिया। इसके बाद रहीम ने गुजरात, कुम्भलनेर, उदयपुर आदि युद्धों में विजय प्राप्त की। इस पर अकबर ने अपने समय की सर्वोच्च उपाधि 'मीरअर्ज' से रहीम को विभूषित किया। सन 1584 में अकबर ने रहीम को खान-ए-खाना की उपाधि से सम्मानित किया। रहीम का देहांत 71 वर्ष की आयु में सन 1627 में हुआ। रहीम को उनकी इच्छा के अनुसार दिल्ली में ही उनकी पत्नी के मकबरे के पास ही दफना दिया गया। यह मजार आज भी दिल्ली में मौजूद हैं। रहीम ने स्वयं ही अपने जीवनकाल में इसका निर्माण करवाया था।

अकबर के दरबार में

हुमायूँ ने युवराज अकबर की शिक्षा-दिक्षा के लिए बैरम खाँ को चुना और अपने जीवन के अंतिम दिनों में राज्य का प्रबंध की जिम्मेदारी देकर अकबर का अभिभावक नियुक्त किया था। बैरम खाँ ने कुशल नीति से अकबर के राज्य को मजबूत बनाने में पूरा सहयोग दिया। किसी कारणवश बैरम खाँ और अकबर के बीच मतभेद हो गया। अकबर ने बैरम खाँ के विद्रोह को सफलतापूर्वक दबा दिया और अपने उस्ताद की मान एवं लाज रखते हुए उसे हज पर जाने की इच्छा जताई। परिणामस्वरूप बैरम खाँ हज के लिए रवाना हो गये। बैरम खाँ हज के लिए जाते हुए गुजरात के पाटन में ठहरे और पाटन के प्रसिद्ध सहस्रलिंग सरोवर

में नौका-विहार के बाद तट पर बैठे थे कि भेंट करने की नियत से एक अफगान सरदार मुबारक खाँ आया और धोखे से बैरम खाँ की हत्या कर दी। यह मुबारक खाँ ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए किया।

इस घटना ने बैरम खाँ के परिवार को अनाथ बना दिया। इन धोखेबाजों ने सिर्फ कत्ल ही नहीं किया, बल्कि काफी लूटपाट भी मचाया। विधवा सुल्ताना बेगम अपने कुछ सेवकों सहित बचकर अहमदाबाद आ गई। अकबर को घटना के बारे में जैसे ही मालूम हुआ, उन्होंने सुल्ताना बेगम को दरबार वापस आने का संदेश भेज दिया। रास्ते में संदेश पाकर बेगम अकबर के दरबार में आ गई। ऐसे समय में अकबर ने अपने महानता का सबूत देते हुए इनको बड़ी उदारता से शरण दी और रहीम के लिए कहा "इसे सब प्रकार से प्रसन्न रखो। इसे यह पता न चले कि इनके पिता खान खानाँ का साया सर से उठ गया है। बाबा जम्बूर को कहा यह हमारा बेटा है। इसे हमारी दृष्टि के सामने रखा करो।" इस प्रकार अकबर ने रहीम का पालन- पोषण एकदम धर्म- पुत्र की भांति किया। कुछ दिनों के पश्चात् अकबर ने विधवा सुल्ताना बेगम से विवाह कर लिया। अकबर ने रहीम को शाही खानदान के अनुरूप 'मिर्जा खाँ' की उपाधि से सम्मानित किया। रहीम की शिक्षा- दीक्षा अकबर की उदार धर्म- निरपेक्ष नीति के अनुकूल हुई। इसी शिक्षा-दीक्षा के कारण रहीम का काव्य आज भी हिंदूओं के गले का कण्ठहार बना हुआ है। **दिनकर जी** के कथनानुसार अकबर ने अपने दीन-इलाही में हिंदूत्व को जो स्थान दिया होगा, उससे कई गुणा ज्यादा स्थान रहीम ने अपनी कविताओं में दिया। रहीम के बारे में यह कहा जाता है कि वह धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।

विवाह

रहीम की शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् सम्राट अकबर ने अपने पिता हुमायूँ की परंपरा का निर्वाह करते हुए, रहीम का विवाह बैरम खाँ के विरोधी मिर्जा अजीज कोका की बहन माहबानों से करवा दिया। इस विवाह में भी अकबर ने वही किया, जो पहले करता रहा था कि विवाह के संबंधों के बदौलत आपसी तनाव व पुरानी से पुरानी कटुता को समाप्त कर दिया करता था। रहीम के विवाह से बैरम खाँ और मिर्जा के बीच चली आ रही पुरानी रंजिश खत्म हो गयी। रहीम का विवाह लगभग तेरह साल की उम्र में कर दिया गया था। इनकी दस संतानें थी।

मीर अर्ज का पद

अकबर के दरबार को प्रमुख पदों में से एक मीर अर्ज का पद था। यह पद पाकर कोई भी व्यक्ति रातों रात अमीर हो जाता था, क्योंकि यह पद ऐसा था, जिससे पहुँचकर ही जनता की फरियाद सम्राट तक पहुँचती थी और सम्राट के द्वारा लिए गए फैसले भी इसी पद के जरिये जनता तक पहुँचाए जाते थे। इस पद पर हर दो- तीन दिनों में नए लोगों को नियुक्त किया जाता था। सम्राट अकबर ने इस पद का काम- काज सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने सच्चे तथा विश्वास पात्र अमीर रहीम को मुस्तकिल मीर अर्ज नियुक्त किया। यह निर्णय सुनकर सारा दरबार सन्न रह गया था। इस पद पर आसीन होने का मतलब था कि वह व्यक्ति जनता एवं सम्राट दोनों में सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

रहीम शहजादा सलीम

काफी मिन्नतों तथा आशीर्वाद के बाद अकबर को शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से एक लड़का प्राप्त हो सका, जिसका नाम उन्होंने सलीम रखा। शहजादा सलीम माँ-बाप और दूसरे लोगों के अधिक दुलार के कारण शिक्षा के प्रति उदासीन हो गया था। कई महान लोगों को सलीम की शिक्षा के लिए अकबर ने लगवाया। इन महान लोगों में शेर अहमद, मीर कलाँ और दरबारी विद्वान अबुलफजल थे। सभी लोगों की कोशिशों के बावजूद शहजादा सलीम को पढ़ाई में मन न लगा। अकबर ने सदा की तरह अपना आखिरी हथियार रहीम खाने खाना को सलीम का अतालीक नियुक्त किया। कहा जाता है रहीम यह गौरव पाकर बहुत प्रसन्न थे।

भाषा शैली

रहीम ने अवधी और ब्रजभाषा दोनों में ही कविता की है, जो सरल, स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण है।

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत होत ही होय।।

उनके काव्य में शृंगार, शांत तथा हास्य रस मिलते हैं। दोहा, सोरठा, बरवै, कवित्त और सवैया उनके प्रिय छंद हैं। रहीम दास जी की भाषा अत्यंत सरल है, उनके काव्य में भक्ति, नीति, प्रेम और शृंगार का सुन्दर समावेश मिलता है।

उन्होंने सोरठा एवं छंदों का प्रयोग करते हुए अपनी काव्य रचनाओं को किया है। उन्होंने ब्रजभाषा में अपनी काव्य रचनाएं की है। उनके ब्रज का रूप अत्यंत व्यवहारिक, स्पष्ट एवं सरल है। उन्होंने तदभव शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। ब्रज भाषा के अतिरिक्त उन्होंने कई अन्य भाषाओं का प्रयोग अपनी काव्य रचनाओं में किया है। अवधी के ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी रहीमजी ने अपनी रचनाओं में किया है, उनकी अधिकतर काव्य रचनाएं मुक्तक शैली में की गई हैं, जो कि अत्यंत ही सरल एवं बोधगम्य है।

रहीम ग्रंथावली

भाग 1

दोहावली

तैं रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहै, कृष्णचंद्र की ओर।।1।।
अच्युत-चरण-तरंगिणी, शिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल।।2।।
अधम वचन काको फल्यो, बैठि ताड़ की छाँह।
रहिमन काम न आय है, ये नीरस जग माँह।।3।।
अन्तर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगटै सोइ।
कै जिय आपन जानहीं, कै जिहि बीती होइ।।4।।
अनकीन्हीं बातैं करै, सोवत जागे जोय।
ताहि सिखाय जगायबो, रहिमन उचित न होय।।5।।
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संजोग तें, पचवत आगि चकोर।।6।।
अनुचित वचन न मानिए जदपि गुराइसु गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तें, सुजस भरत को बाढ़ि।।7।।
अब रहीम चुप करि रहउ, समुझि दिनन कर फेर।
जब दिन नीके आइ हैं बनत न लगि है देर।।8।।
अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम।।9।।

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि।।10।।
अमृत ऐसे वचन में, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस।।11।।
अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए जन चारि।
रिनिया, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि।।12।।
असमय परे रहीम कहि, माँगि जात तजि लाज।
ज्यों लछमन माँगन गये, पारासर के नाज।।13।।
आदर घटे नरेस ढिंग, बसे रहे कछु नाहिं।
जो रहीम कोटिन मिले, धिग जीवन जग माहिं।।14।।
आप न काहू काम के, डार पात फल फूल।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल।।15।।
आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बंधु सनेह।
जीरन होत न पेड़ ज्यौं, थामे बरै बरेह।।16।।
उरग, तुरंग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार।।17।।
ऊगत जाही किरन सों अथवत ताही काँति।
त्यौं रहीम सुख दुख सवै, बढ़त एक ही भाँति।।18।।
एक उदर दो चोंच है, पंछी एक कुरंड।
कहि रहीम कैसे जिए, जुदे जुदे दो पिंड।।19।।
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलै फलै अघाय।।20।।
ए रहीम दर दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िये वे रहीम अब नाहिं।।21।।
ओछो काम बड़े करैं तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहै न कोय।।22।।
अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय।।23।।
अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्का, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन।।24।।

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन।।25।।
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।।26।।
कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होय।।27।।
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि मोहि समान को कूर।।28।।
करम हीन रहिमन लखो, धँसो बड़े घर चोर।
चिंतत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गौ भोर।।29।।
कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय।।30।।
कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात।।31।।
कहि रहीम य जगत तैं, प्रीति गई दै टेर।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेर।।32।।
कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत।।33।।
कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय।।34।।
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग।।35।।
कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै जाय।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय।।36।।
कागद को सो पूतरा, सहजहि मैं घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय।।37।।
काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए नदी सिरावत मौर।।38।।
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेई।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देई।।39।।

कहा करौं बैकुंठ लै, कल्प बृच्छ की छाँह।
रहिमन दाख सुहावनो, जो गल पीतम बाँह।।40।।
काह कामरी पामरी, जाड़ गए से काज।
रहिमन भूख बुताइए, कैस्यो मिलै अनाज।।41।।
कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं।।42।।
कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों वैर।।43।।
कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गये पछिताय।
संपति के सब जात हैं, विपति सबै लै जाय।।44।।
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम।।45।।
खरच बढ़यो, उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन।।46।।
खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय।।47।।
खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस दिया की रीति।।48।।
खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान।।49।।
गरज आपनी आपसों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलबधू, पर घर जाय लजाय।।50।।
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव।।51।।
गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि।।52।।
गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतोरी आहि।।53।।
चरन छुए मस्तक छुए, तेहु नहिं छाँड़ति पानि।
हियो छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि।।54।।

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय।।55।।
चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह।।56।।
चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा पड़त है, सो आवत यह देस।।57।।
चिंता बुद्धि परेखिए, टोटे परख त्रियाहि।
उसे कुबेला परखिए, ठाकुर गुनी किआहि।।58।।
छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहिमन हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात।।59।।
छोटेन सो सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख।।60।।
जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुँन सिर चोट।।61।।
जब लगि बित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिंन हित होय।।62।।
ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ।।63।।
जलहिं मिलाय रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर।
अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर।।64।।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय।।65।।
जानि अनीती जे करैं, जागत ही रह सोइ।
ताहि सिखाइ जगाइबो, रहिमन उचित न होइ।।66।।
जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह।।67।।
जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।68।।
जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढि।।69।।

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दोहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं।।70।।
जेहि अंचल दीपक दुर्यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात।।71।।
जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन।।72।।
जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताकों बुरा न मानिए, लेन कहाँ सो जाय।।73।।
जसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती पर ही परत है, शीत घाम औ मेह।।74।।
जैसी तुम हमसों करी, करी करो जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर।।75।।
जो अनुचितकारी तिन्हैं, लगै अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम।।76।।
जो घर ही में घुस रहे, कदली सुपत सुडील।
तो रहीम तिनतें भले, पथ के अपत करील।।77।।
जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम।।78।।
जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाँहि।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं।।79।।
जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगै पारतें, सो रहीम बहि जाय।।80।।
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग।।81।।
जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ों टेढ़ो जाय।।82।।
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ कहो कर पर धर्यो, गोवर्धन गोपाल।।83।।
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय।।84।।

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय।।84।।
जो रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन कमल की ओट।। 86।।
जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट।।87।।
जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रायबो, आँस गारिबो खीस।।88।।
जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं।।89।।
जो रहीम भावी कतौं, होति आपुने हाथ।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।।90।।
जो रहीम होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ।।91।।
जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटाय।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खाय।।92।।
टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार।।93।।
तन रहीम है कर्म बस, मन राखो ओहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर।।94।।
तब ही लौ जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम।।95।।
तरुवर फल नहिं खात हैं, सरबर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान।।96।।
तासों ही कछु पाइए, कीजै जाकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझे पियास।।97।।
तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब हिद ठहराइ।
उमड़ि चलै जल पार ते, जो रहीम बढ़ि जाइ।।98।।
तैं रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
खस कागद को पूतरा, नमी माँहि खुल जाय।।99।।

थोथे बादर क्वाँर के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करै पाछिली बात।।100।।
थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय।।101।।
दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माँहि।
रहिमन चातक रटनि हूँ, सरवर को कोउ नाहिं।।102।।
दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीनबन्ध्धु से बन्ध्धु।।103।।
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय।।104।।
दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं।।105।।
दुख नर सुनि हाँसी करै, धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करै, ऐसे वे रघुबीर।।106।।
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि।।107।।
दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि।।108।।
देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरें, याते नीचे नैन।।109।।
दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहिं।।110।।
धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँह समात।।111।।
धन दारा अरु सुतन सों, लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोउ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त।।112।।
धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पिअत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन हे, जगत पिआसो जाय।।114।।
धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह।।115।।

धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज।।116।।
नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग।।117।।
नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि।।118।।
नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत।।119।।
निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भाव के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ।।120।।
नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन।।121।।
पन्नग बेलि पतिव्रता, रति सम सुनो सुजान।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान।।122।।
परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन है बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस।।123।।
पसरि पत्र झँपहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत।।124।।
पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन।।125।।
पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन।।126।।
पिय बियोग तें दुसह दुख, सूने दुख ते अंत।
होत अंत ते फिर मिलन, तोरि सिधाए कंत।।127।।
पुरुष पूजें देवरा, तिय पूजें रघुनाथ।
कहँ रहीम दोउन बनै, पँड़ो बैल को साथ।।128।।
प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय।।129।।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं।
रहिमन मैन-तुरंग चढ़ि, चलिबो पाठक माहिं।।130।।

फरजी सह नहीं सकै, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चालसों, प्यादो होत वजीर।।131।।
बड़ माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिय बलाय।।132।।
बड़े दीन को दुख सुनो, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सो कब हुतो, कहु रहीम पहिचानि।।133।।
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि।।134।।
बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ।।135।।
बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल।।1361।
बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनौ धनी को जाइ।
घटै बढ़ै बाको कहा, भीख माँगि जो खाइ।।137।।
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस।।138।।
बाँकी चितवन चित चढ़ी, सूधी तौ कछु धीम।
गाँसी ते बढ़ि होत दुख, काढ़ि न कढ़त रहीम।।139।।
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय।।140।।
बिपति भए धन ना रहे, रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भए भोर।।141।।
भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान।।142।।
भलो भयो घर ते छुट्यो, हँस्यो सीस परिखेत।
काके काके नवत हम, अपन पेट के हेत।।143।।
भार झोंकि के भार में, रहिमन उतरे पार।
पै बूड़े मझधार में, जिनके सिर पर भार।।144।।
भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान।।145।।

भावी या उनमान को, पांडव बनहि रहीम।
जदपि गौरि सुनि बाँझ है, बरु है संभु अजीम।।146।।
भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम।।147।।
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिर तें भूमि लौं, लखों तो एकै रूप।।148।।
मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय।।149।।
मनिसिज माली की उपज, कहि रहीम नहिं जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय।।150।।
मन से कहाँ रहिम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरै, मन तेहि हाथ बिकान।।151।।
मंदन के मरिहू गये, औगुन गुन न सिराहिं।
ज्यों रहीम बाँधहु बँधे, मराह ह्रवै अधिकाहिं।।1521।
मनि मनिक महँगे किये, ससतो तृन जल नाज।
याही ते हम जानियत, राम गरीब निवाज।।153।।
महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष।।154।।
माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करो, तऊ बावनै नाम।।155।।
माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ।।156।।
मान सरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक-बालकनहिं जोग।।157।।
मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस।।158।।
माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और।
त्यों रहीम जग जानिये, छुटे आपुने ठौर।।159।।
मीन कटि जल धोइये, खाये अधिक पियास।
रहिमन प्रीति सराहिये, मुयेउ मीन कै आस।।160।।

मुकता कर करपूर कर, चातक जीवन जोय।
एतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन विष होय।।161।।
मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग।।162।।
मूढ़ मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेषि।
स्याम कचन में सेत ज्यों, दूरि कीजिअत देखि।।163।।
यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीति।।165।।
यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत होत ही होय।।166।।
यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता, चोर, कमान के, नये ते अवगुन होय।।167।।
याते जान्यो मन भयो, जरि बरि भस्म बनाय।
रहिमन जाहि लगाइये, सो रूखो ह्वै जाय।।168।।
ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु।
ज्यों तिय कुच आपुन गहे, आप बड़ाई आपु।।169।।
ये रहीम दर-दर फिरै, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छाँडि देउ, वे रहीम अब नाहिं।।170।।
यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार।।171।।
यों रहीम तन हाट में, मनुआ गयो बिकाय।
ज्यों जल में छाया परे, काया भीतर नॉय।।172।।
यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सो, अथवत ताही भाँति।।173।।
रन, बन, ब्याधि, विपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गये कि सोय।।174।।
रहिमन अती न कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सैजन अति फूले तऊ डार पात की हानि।।175।।
रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह।
मृग उछरत आकाश को, भूमी खनत बराह।।176।।

रहिमन अपने पेट सौ, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अन खाये रहे, तासों को अनखाय।।177।।
रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गंभीर।
बागन बिच बिच देखिअत, सेंहुड़, कुंज, करीर।।178।।
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बानसों, रुधिरे देत बताय।।179।।
रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।180।।
रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति।।181।।
रहिमन उजली प्रकृत को, नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग।।182।।
रहिमन एक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, वीचन परे पहार।।183।।
रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटै स्वान के, दोऊ भाँति विपरीति।।184।।
रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत।।185।।
रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस।।186।।
रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक।।187।।
रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रहते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ।।188।।
रहिमन कुटिल कुठार ज्यों, करत डारत द्वै टूक।
चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की हूक।।189।।
रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पति-राखनहार हैं, माखन-चाखनहार।।190।।
रहिमन खोजे ऊख में, जहाँ रसन की खानि।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति में हानि।।191।।

रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय।।192।।
रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं।।192।।
रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावै पीठ।।194।।
रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ।।195।।
रहिमन छोटे नरन सो, होत बड़ो नहीं काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम।।196।।
रहिमन जगत बड़ाई की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करे तन हानि।।197।।
रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दशानन अछत ही, कपि लागे गथ लेन।।198।।
रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल आकाश लौं, क्यो न कालिमा होय।।199।।
रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सिय कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय।।200।।
रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल।।201।।
रहिमन जो तुम कहत थे, संगति ही गुन होय।
बीच उखारी रमसरा, रस काहे ना होय।।202।।
रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाँव।
जो बासर को निस कहै, तौ कचपची दिखाव।।203।।
रहिमन ठहरी धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि को धूरि।।204।।
रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान।।205।।
रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि।। 206।।

रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय।
नैन बान की चोट ते, चोट परे मरि जाय।।207।।
रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुँह स्याह।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को ब्याह।।208।।
रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाँचबे योग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुआँ खनावत लोग।।209।।
रहिमन दुरदिन के परे, बड़ेन किए घटि काज।
पाँच रूप पांडव भए, रथवाहक नल राज।।210।।
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि।।211।।
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ परि जाय।।212।।
रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम।।213।।
रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय।।214।।
रहिमन निज संपति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय।।215।।
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि।।216।।
रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चोरावै संपुटी, मारु सहै घरिआर।।217।।
रहिमन पर उपकार के, करत न यारी बीच।
मांस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच।।218।।
रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून।।219।।
रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन।।220।।
रहिमन पेटे सों कहत, क्यों न भये तुम पीठि।
भूखे मान बिगारहु, भरे बिगारहु दीठि।।221।।

रहिमन पैंड़ा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपीलिका, लोग लदावत बैल।।222।।
रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून।।223।।
रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाय बजाय।।224।।
रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ।।225।।
रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन को नाहिं।
जे जानत ते कहत नाहिं, कहत ते जानत नाहिं।।226।।
रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम।।227।।
रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात।।228।।
रहिमन मनहिं लगाइ के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय।।229।।
रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मझाव।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव।।230।।
रहिमन माँगत बड़ेन की, लघुता होत अनूप।
बलि मख माँगत को गए, धरि बावन को रूप।।231।।
रहिमन यहि न सराहिये, लैन दैन कै प्रीति।
प्रानहिं बाजी राखिये, हारि होय कै जीति।।232।।
रहिमन यहि संसार में, सब सौं मिलिये धाइ।
ना जानैं केहि रूप में, नारायण मिलि जाइ।।233।।
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात।।234।।
रहिमन या तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुए राखि बटोर।।235।।
रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत।।236।।

रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस किहि काम को रहिबो आपुहि आप।।237।।
रहिमन रहिबो वा भलो, जो लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच।।238।।
रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैलो करे, सो मैदा जरि जाय।।239।।
रहिमन राज सराहिए, ससिसम सूखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयन खोय।।240।।
रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाय।
पसु खर खात सवादसों, गुर गुलियाए खाय।।241।।
रहिमन रिस को छाँड़ि कै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस।।242।।
रहिमन रिस सहि तजत नहीं, बड़े प्रीति की पौरि।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरी।।243।।
रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय।।244।।
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअत हू, साँप सहज धरि खाय।।245।।
रहिमन वहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत।।2461।
रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करी होरी रची, भई तनिक में छार।।247।।
रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम, जस, दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिनु पूँछ बिषान।।248।।
रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय।।249।।
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।।250।।
रहिमन सीधी चाल सों, प्यादा होत वजीर।
फरजी साह न हुइ सकै, गति टेढ़ी तासीर।।251।।

रहिमन सुधि सबतें भली, लगै जो बारंबार।
बिछुरे मानुष फिरि मिलें, यहै जान अवतार।।252।।
रहिमन सो न कछू गनै, जासों, लागे नैन।
सहि के सोच बेसाहियो, गयो हाथ को चैन।।253।।
राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि।।254।।
राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहिं आपुनो, जनम गँवायो बादि।।255।।
रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत।।256।।
रूप, कथा, पद, चारु, पट, कंचन, दोहा, लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्मगति, मोल रहीम बिसाल।।257।।
रूप बिलोकि रहीम तहँ, जहँ जहँ मन लगि जाय।
थाके ताकहिं आप बहु, लेत छौड़ाय छोड़ाय।।258।।
रोल बिगाड़े राज नै, मोल बिगाड़े माल।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल।।259।।
लालन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माँहिं।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं।।260।।
लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगरु स्थान।।261।।
लोहे की न लोहार का, रहिमन कही विचार।
जो हनि मारे सीस में, ताही की तलवार।।262।।
बरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै बसिबो उचित न योग।।263।।
बहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत।।264।।
बिधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलि हैं, तानसेन के तान।।265।।
बिरह रूप धन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत।।266।।

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनेवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग।।267।।
सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम।।268।।
सब को सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम।।269।।
सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कहँ जाय।
रहिमन सेल्ह जोई सहै, सो जागीरैं खाय।।270।।
समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान।।271।।
समय परे ओछे बचन, सब के सहै रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम।।272।।
समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जाय।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछिताय।।273।।
समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक।।274।।
सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम।।275।।
सर सूखे पच्छी उड़ै, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं।।276।।
स्वारथ रचन रहीम सब, औगुनहू जग माँहि।
बड़े बड़े बैठे लखौ, पथ रथ कूबर छाँहि।।277।।
स्वासह तुरिय उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीन पवित्त।।278।।
साधु सराहै साधुता, जती जोखिता जान।
रहिमन साँचौ सूर को, बैरी करै बखान।।279।।
सौदा करो सो करि चलौ, रहिमन याही बाट।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूरी जान है बाट।।280।।
संतत संपति जानि कै, सब को सब कुछ देत।
दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेत।।281।।

संपति भरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माहिं।।282।।
ससि की सीतल चाँदनी, सुंदर, सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटी रहीम मन आय।।283।।
ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटि सीम।।284।।
सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रबि को कहा, जो घटि लखै उलूक।।285।।
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि अपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर।।286।।
हरी हरी करुना करी, सुनी जो सब ना टेर।
जब डग भरी उतावरी, हरी करी की बेर।।287।।
हित रहीम इतऊ करै, जाकी जिती बिसात।
नहिं यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात।।288।।
होत कृपा जो बड़ेन की सो कदाचि घटि जाय।
तौ रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो न जाय।।289।।
होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर।।290।।

सोरठा

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरो पै करो लगै।।291।।
रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब को भावै नहीं।
जिनके अगनित मीत, हमैं गीरबन को गनै।।292।।
रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं।।293।।
जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में।।294।।
रहिमन नीर पखान, बूड़ै पै सीझै नहीं।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं।।295।।

रहिमन बहरी बाज, गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै।
पेट अधम के काज, फेरि आय बंधन परै।।296।।
रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पिआवै मान बिनु।
बरु विष देय, बुलाय, मान सहित मरिबो भलो।।297।।
बिंदु मों सिंधु समान को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपुने आप तें।।298।।
चूल्हा दीन्हो बार, नात रह्यो सो जरि गयो।
रहिमन उतरे पार, भर झोंकि सब भार में।।299।।

प्रमुख रचनाएं

रहीम दोहावली, बरवै, नायिका भेद, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी, नगर शोभा आदि।